उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAST-118

ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत)

खण्ड—क	पेज न0
इकाई-1 काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय	5-12
इकाई-2 प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्य	13-19
इकाई-3 काव्य-सम्प्रदायों का सामान्य परिचय	21-26
इकाई-4 ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व	27-32
इकाई-5 ध्वनि सिद्धान्त	33-40
खण्ड—ख	
इकाई-6 कारिका 01 से 12 तक की व्याख्या (प्रथम उद्योत)	41-52
इकाई-7 कारिका 13 से 19 तक की व्याख्या (प्रथम उद्योत)	53-64
इकाई-8 कारिका 01 से 05 तक की व्याख्या (चतुर्थ उद्योत)	65-74
इकाई-9 कारिका 06 से 17 तक की व्याख्या (चतुर्थ उद्योत)	75-86
इकाई-10 आलोचनात्मक प्रश्न	87-96

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAST – 118 : ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत)

परामर्श समिति

आचार्य सत्यकाम	कुलपति, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
आचार्य सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ0प्र0रा0ट0मु0वि0,प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

आचार्य विनोद कुमार गुप्त	आचार्य संस्कृत/उपनिदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ0प्र0रा0ट0मु0वि0, प्रयागराज
आचार्य हरिदत्त शर्मा	आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग इ0वि0वि, प्रयागराज
आचार्य कौशलेन्द्र पाण्डेय	आचार्य एवं अध्यक्ष, साहित्य संस्कृत विद्या एवं धर्मविज्ञान संकाय, वाराणसी
आचार्य उमेश प्रताप सिंह	आचार्य, संस्कृत विभाग काशी हिविवि, वाराणसी
डॉ. स्मिता अग्रवाल	सहायक आचार्य, संस्कृत, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक/परिमापक

आचार्य विनोद कुमार गुप्त	आचार्य संस्कृत/उपनिदेशक, मानविकी विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 प्रवीण कुमार द्विवेदी	सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

आचार्य विनोद कुमार गुप्त	आचार्य संस्कृत/उपनिदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ0प्र0रा0ट0मु0वि0, प्रयागराज

2024 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–2024

ISBN- 978-81-976126-9-5

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेष राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2024

मुद्रकः– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

© UPRTOU, 2024, <ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत)> is made available under acreative commons Attribution-Share Alike 4.0 http://creativecommons.org/licences/by-sa/4.0

MAST – 118 (N)

ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत)

पाठ्यक्रम–परिचय

परास्नातक संस्कृत के इस पाठ्यक्रम में ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत) का अध्ययन किया जाता है। इस पाठ्यक्रम में दो खण्ड हैं। खण्ड–1 में संस्कृत काव्यशास्त्र का परिचय देते हुए प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसी खण्ड में ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के व्यक्तित्व–कर्तृत्व एवं ध्वनि सिद्धान्त का विवेचन किया गया है।

खण्ड–2 व्याख्या से सम्बन्धित है। इस खण्ड में ध्वन्यालोक के प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत की कारिकाओं की व्याख्या की गयी है।

MAST – 118 (N)
ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत)

खण्ड–क

इकाई–1 **काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय -** काव्यशास्त्र का अर्थ, काव्य में शास्त्र शब्द का अर्थ, काव्यशास्त्र के विविध नाम (काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, क्रियाकल्प)

इकाई–2 प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्य- भरत, भामह, मेधाविरुद्र, रुद्रट, वामन, दण्डी, मम्मट, राजशेखर, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ

इकाई–3 काव्य-सम्प्रदायों का सामान्य परिचय (रस-सम्प्रदाय, अलङ्कार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, औचित्य सम्प्रदाय)

इकाई–4 ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व (ध्वन्यालोक, तत्त्वालोक, अर्जुनचरित, देवीशतक, विषमबाणलीला)

इकाई–5 ध्वनि सिद्धान्त (स्फोट सिद्धान्त, ध्वनि का अर्थ, ध्वनि के विविध विकल्प, ध्वनि का स्वरूप, ध्वनि के भेद)

खण्ड–ख

इकाई–6 कारिका व्याख्या (मङ्गलाचरण की व्याख्या, कारिका 01 की व्याख्या, कारिका 02 की व्याख्या, कारिका 03 की व्याख्या, कारिका 04 की व्याख्या, कारिका 05 की व्याख्या, कारिका 06 की व्याख्या, कारिका 07 की व्याख्या, कारिका 08 की व्याख्या, कारिका 09 की व्याख्या, कारिका 10 की व्याख्या, कारिका 11 की व्याख्या, कारिका 12 की व्याख्या)

इकाई–7 कारिका व्याख्या (कारिका 13 की व्याख्या, कारिका 14 की व्याख्या, कारिका 15 की व्याख्या, कारिका 16 की व्याख्या, कारिका 17 की व्याख्या, कारिका 18 की व्याख्या, कारिका 19 की व्याख्या)

इकाई–8 कारिका व्याख्या (कारिका 01 की व्याख्या, कारिका 02 की व्याख्या, कारिका 03 की व्याख्या, कारिका 04 की व्याख्या, कारिका 05 की व्याख्या)

इकाई–9 कारिका की व्याख्यायें (कारिका 06 की व्याख्या, कारिका 07 की व्याख्या, कारिका 08 की व्याख्या, कारिका 09 की व्याख्या, कारिका 10 की व्याख्या, कारिका 11 की व्याख्या, कारिका 12 की व्याख्या, कारिका 13 की व्याख्या, कारिका 14 की व्याख्या, कारिका 15 की व्याख्या, कारिका 16 की व्याख्या, कारिका 17 की व्याख्या)

इकाई–10 आलोचनात्मक प्रश्न

MAST – 118 (N)

ध्वन्यालोक (प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत)

खण्ड क

इकाई 1 – काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय

1.3.1 काव्यशास्त्र का अर्थ

1.3.2 काव्य में शास्त्र शब्द का अर्थ

1.3.3 काव्यशास्त्र के विविध नाम

1.3.3.1 काव्यशास्त्र

1.3.3.2 साहित्यशास्त्र

1.3.3.3 अलङ्कारशास्त्र

1.3.3.4 क्रियाकल्प

1.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.4.1.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.4.1.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1.4.1.3 दीर्घ-उत्तरीय पश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- काव्यशास्त्र के अर्थ का अवबोध कर सकेंगे।
- काव्य में शास्त्र पद के अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- काव्यशास्त्र के विविध नाम जैसे काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, यायावरीविद्या, काव्यमीमांसा, काव्यालोचन, काव्यप्रकाश एवं क्रियाकल्प का अवबोध प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मानवीय सृष्टि ने प्रकृति का वर्णन करने के लिए स्वविवेक द्वारा भाँति-भाँति की कल्पना करके उसे शास्त्रीय स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा की है। अपने शब्दों द्वारा सजाकर उस वर्णनीयता को चमत्कृत करने का प्रयास किया है। सम्पूर्णता का वर्णन करना तो सम्भव नहीं है किन्तु अपने मस्तिष्क से प्रकृति के प्रत्येक कण, उपकण और प्रत्युपकण तक का वर्णन किया है। इस वर्णनीयता के कारण उसे कवि संज्ञा प्रदान की गई तथा

कवि को क्रान्तदर्शी भी कहा गया है। "जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि" यह लोकोक्ति उसकी सूक्ष्मदर्शिता को भी प्रदर्शित करती है। कवि लघुकाय वस्तु का भी वर्णन पर्वत सदृश कर सकता है और पर्वतसदृश वस्तु का भी वर्णन सूत्ररूप में कर सकता है। यह वर्णनात्मकता जब शास्त्रीय रूप ले लेती है तो उसे साहित्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र अथवा काव्यशास्त्र के अभिधान से जाना जाता है। काव्यशास्त्र लोकोत्तरचमत्कार-प्रदायकत्व, रसास्वादकारकत्व, आह्लादकत्व आदि के सर्वप्रमुख उपादान के रूप में प्रतिष्ठित है। यह नीरस तत्त्वों को सरस बना देता है। इसकी शास्त्रीयता के आधार पर कविजन अपने काव्यनिर्माण में इसका उपयोग करते हैं।

1.2 काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय

कविकर्म को शास्त्रीयरूपता प्रदान करनेवाली धारा का नाम काव्यशास्त्र है। यह उपस्थित, अनुपस्थित और अनुपलब्ध सामग्री को भी कविचातुर्य से सरस रूप देकर आह्लादक बना देता है। विद्वानों ने कवि के प्रत्येक कर्म को काव्य नहीं माना है अपितु कवि की रचनाधर्मिता को ही काव्य की श्रेणी में रखा है। कवि की रचनाधर्मिता के द्वारा उद्भूत काव्य (जिसे लक्ष्य-ग्रन्थ कहा जाता है) के आधार पर जो उसका अनुशासन बनाया जाता है, वह काव्यशास्त्र के रूप में अभिधेय और ज्ञेय होता है। काव्यानुशासन के निर्माताओं के द्वारा काव्य में वर्णित विविध सामग्रियों द्वारा तत्विषयक ऊह करके काव्यशास्त्रीय तात्त्विक वस्तुओं का वर्णन किया जाता है। जिसका अध्ययन करके नवीन कवि अपने काव्य को निर्दुष्ट (अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असम्भव दोषों से रहित) बना सकता है। साथ ही सहृदय को बिना किसी बाधा के रसानन्द की प्राप्ति कराता है। काव्यशास्त्र के अध्ययन के बिना हमें किसी भी काव्य अथवा कवि के गुण-दोषों का पता नहीं चल सकता है और काव्यानन्द की अनुभूति भी नहीं हो सकती है। अतः काव्य के मर्म का अवबोध करने के लिए काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। इसका अपर अभिधान साहित्यशास्त्र है। साहित्यशास्त्र के विषय में कहा गया है – 'हितेन सह सहितम्, सहितस्य भावः साहित्यम्' अर्थात् जो हित के साथ होता है वह सहित कहलाता है और ऐसे सहित के भाव को साहित्य अभिधान से जाना जाता है। इस कल्याणपरकता को शास्त्रीय रूप देने के लिए साहित्य को शास्त्ररूपता प्रदान की जाती है, जिससे साहित्य शास्त्रस्वरूप प्राप्त कर भावी पीढ़ियों को भी उस आह्लादकत्व का अनुभव करा सके। ऐसे हितकारक भावों को शास्त्रीयरूपता प्रदान करने की विधि का व्याख्यान किया जाता है, जिसे साहित्यशास्त्र कहा जाता है-

साहित्यशास्त्रं सकलं यस्मादाविर्भूदिह ।

साहित्यरूपिणं वन्दे पार्वतीपरमेश्वरम् ॥[1]

अर्थात् साहित्यशास्त्र से सबकुछ आविर्भूत है। ऐसे पार्वतीपरमेश्वर (वागर्थरूप) साहित्यरूप को नमस्कार है।

वैदिक संहिताओं की प्राचीनता के कारण भारतीय साहित्य-चिन्तन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यह परम्परा केवल भारतवर्ष की ही नहीं अपितु विश्व की प्राचीनतम धरोहर के रूप में विख्यात है। इस परम्परा में काव्यशास्त्र का इतिहास साहित्य-चिन्तन का विकसित रूप है। अद्यावधि प्राप्त काव्यशास्त्रीय विशिष्ट ग्रन्थ एवं उनके प्रणेता निम्नलिखित हैं[2] -

- नाट्यशास्त्र : भरतमुनि
- अग्निपुराण : (काव्यशास्त्रीय विशिष्ट अंश (मात्र) ही काव्य के लिए उपयोगी है ।)
- काव्यालङ्कार : भामह
- काव्यादर्श : दण्डी
- अलङ्कारसारसंग्रह : उद्भट
- काव्यालङ्कारसूत्र : वामन
- काव्यालङ्कार : रुद्रट
- ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन
- काव्यमीमांसा : राजशेखर

[1] काव्यसिद्धान्तकौमुदी, 1/1

[2] काव्यसिद्धान्तकौमुदी, प्रस्तावना, पृष्ठ ख

- अभिधावृत्तिमातृका : मुकुलभट्ट
- काव्यकौतुक : भट्टतौत
- हृदयदर्पण : भट्टनायक
- वक्रोक्तिजीवित : कुन्तक
- ध्वन्यालोकलोचनटीका तथा नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती : अभिनवगुप्त
- दशरूपक : धनञ्जय
- व्यक्तिविवेक : महिमभट्ट
- सरस्वतीकण्ठाभरण : भोज
- औचित्यविचारचर्चा : क्षेमेन्द्र
- अलङ्कारसर्वस्व : रुय्यक
- वाग्भटालङ्कार : वाग्भट
- काव्यानुशासनम् : हेमचन्द्र
- चन्द्रालोक : जयदेव
- एकावली : विद्याधर
- प्रतापरुद्रयशोभूषणम् : विद्यानाथ
- काव्यप्रकाश : मम्मट
- नाट्यदर्पण : रामचन्द्र
- भावप्रकाश : शारदातनय
- साहित्यदर्पण : विश्वनाथ
- रसमञ्जरी : भानुदत्त
- उज्ज्वलनीलमणि : रूप गोस्वामी
- अलङ्कारशेखर : केशवमिश्र
- कुवलयानन्द : अप्पय दीक्षित
- रसगङ्गाधर : पण्डितराज जगन्नाथ

इन संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों एवं ग्रंथों के आधार पर काव्य के विविध स्वरूपों का विधान किया गया है। इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से काव्य के गुण और दोष आदि का निर्धारण हुआ है। इस प्रकार उपर्युक्त संस्कृत काव्यशास्त्रों में प्रायः काव्य के दशाङ्गों का निरूपण किया गया है :-

- काव्य-लक्षण
- काव्य-प्रयोजन
- काव्य-हेतु
- काव्य-भेद

- शब्द-शक्ति विवेचन
- ध्वनि
- रस
- अलङ्कार
- गुण
- दोष

इन दश काव्यीय तत्त्वों की विस्तृत सीमा में काव्यालोचन के सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्न समाहित हो जाते हैं।[3] इन तत्त्वों का आधार लक्ष्य ग्रन्थ होते हैं। लक्ष्य-ग्रन्थों को आधार बनाकर ही लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण हो, यही काव्यशास्त्रीय परम्परा भी रही है। काव्यशास्त्र के प्रमुख तत्त्वों की शास्त्रीय व्याख्या के लिए लक्षण-ग्रन्थों के प्रमुख आधार रामायण और महाभारत ही थे, जिनका अवलम्बन कर प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई।

1.2.1 काव्यशास्त्र का अर्थ

मेदिनीकोश के अनुसार कवि का कर्म काव्य कहलाता है- 'काव्यं कवेरिदं कर्म कर्म्म भावो वा ग्रन्थः इति मेदिनी' तथा अमरकोश के मत में जो शिक्षा प्रदान करता है वह शास्त्र शब्द से अभिहित होता है- शिष्यते अनेन इति शास्त्रम् (शास् + सर्व धातुभ्यः ष्ट्रन्) इत्यमरः। इस प्रकार कवि का ऐसा (रचनात्मक) कर्म जो (काव्यात्मक) शिक्षा प्रदान करता है, काव्यशास्त्र कहलाता है। काव्य के सौन्दर्य की परीक्षा करनेवाले शास्त्र का नाम 'काव्यशास्त्र' है। प्रारम्भिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों को काव्यालङ्कार भी संबोधित किया गया है। भामह के कारिका रूप में लिखित काव्यशास्त्र का आदि ग्रन्थ काव्यालङ्कार नाम से ही प्रसिद्ध है। आचार्य उद्भट के ग्रन्थ का नाम 'काव्यालङ्कारसारसंग्रह' भी इसका द्योतक है। आचार्य रुद्रट का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' है। आचार्य वामन का सूत्र रूप में लिखित ग्रंथ 'काव्यालङ्कारसूत्र' है। इस प्रकार काव्यशास्त्र के लिए प्रयुक्त नाम 'काव्यालङ्कार' में 'अलङ्कार' शब्द 'सौन्दर्य' अर्थ का द्योतक है। "सौन्दर्यम् अलङ्कार:' (काव्यालङ्कारसूत्र, 1) सूत्र से आचार्य वामन ने अलङ्कार की सौन्दर्यपरकता सिद्ध की है। अन्य आचार्यों ने भी **'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते'** (काव्यादर्श, 2) कहा है। इस प्रकार काव्यालङ्कार शब्द का अभिधा वृत्ति के द्वारा काव्यसौन्दर्यात्मक अर्थ तथा लक्षणा वृत्ति के द्वारा काव्यसौन्दर्यपरक शास्त्रात्मक अर्थ का ग्रहण होता है।

कवि की रचनाधर्मिता का जो शास्त्रीय विश्लेषण करने में समर्थ होता है, वह काव्यशास्त्र कहा जाता है। यह क्रान्तद्रष्टा कवियों द्वारा रचित ग्रन्थों के आधार पर अपने सिद्धान्तों का निर्माण करता है तथा उन सिद्धान्तों के आधार पर सगुणात्मक, अदोषात्मक, अलङ्कारात्मक, रसात्मक, रीत्यात्मक, शब्दार्थात्मक रमणीय काव्य की रचना करने के लिए कवियों को प्रेरित करता है। यह निश्चित है कि काव्यशास्त्र का अध्ययन किए बिना ही काव्य रचना हो सकती है, किन्तु काव्यशास्त्र के अध्ययन के बिना उसके गुण-दोषों, अलङ्कारादि का पता नहीं चल सकता है। अतः हमें काव्यशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। काव्यशास्त्र के आद्य प्रणेता के रूप में भरत मुनि का नाम आदर के साथ लिया जाता रहा है। उनके द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र साहित्यशास्त्र का प्राथमिक ग्रन्थ माना जाता है। भरत मुनि (200 ई. पू.) के अनुसार ऐसी रचना को काव्य कहते हैं, जिसमें अर्थानुरूप मधुर शब्दावली का प्रयोग हो।[4] भामह (500 ई. से 600 ई. के मध्य) ने काव्य के स्वरूप का निर्धारण करते हुए कहा कि शब्द तथा अर्थ से युक्त रचना को काव्य कहते हैं :-

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।[5]

काव्य-लक्षण का विवेचन करते हुए अलङ्कारवादी आचार्य दण्डी (सप्तम शताब्दी) ने अलङ्कार को ही काव्य-सौन्दर्य का कारण माना है :-

[3] भारतीय काव्यशास्त्र (संस्कृत) का इतिहास, पृष्ठ संख्या 3

[4] भारतीय काव्यशास्त्र (संस्कृत) का इतिहास, पृष्ठ संख्या 3

[5] काव्यालङ्कार, 1/16

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवछिन्ना पदावली।[6]

वामन (750 ई. से 850 ई. के मध्य) ने रीति विवेचन के क्रम में काव्य-लक्षण पर विचार किया। उनके अनुसार गुण और अलङ्कार से युक्त शब्दार्थ की संज्ञा काव्य है :-

काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वतते ।[7]

काव्यलक्षण की दृष्टि से रुद्रट (825 ई. के आसपास) का कोई रेखांकित स्थान नहीं है, फिर भी उन्होंने काव्य-लक्षण के विषय में कहा है:-

ननु शब्दार्थौ काव्यम् ।[8]

अर्थात् शब्द एवं अर्थ के समन्वय से ही काव्य निःसृत होता है। यह लक्षण अत्यन्त संक्षिप्त एवं अपर्याप्त प्रतीत होता है। आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा ध्वनि को ही मानकर एक नवीन प्रस्थान का प्रणयन किया :-

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।

केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्

तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ॥[9]

राजशेखर के अनुसार काव्य-निर्माण के लिए समाधि (मन की एकाग्रता) एवं अभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता होती है। समाधि आन्तरिक प्रयत्न है तो अभ्यास बाह्य प्रयत्न। ये ही दोनों कवित्व शक्ति की उत्पत्ति में प्रधान कारण बनते हैं।[10] महान् काव्यशास्त्री अभिनवगुप्त (950 ई. से 1025 ई.) ने काव्य-लक्षण पर विचार करते हुए कहा है कि गुण और अलङ्कार के औचित्य से सुन्दर शब्दार्थ रूप शरीर जब ध्वनन रूप आत्मा से युक्त होता है, तो उसे काव्य कहते हैं :-

गुणालङ्कारौचित्यसुन्दरशब्दार्थशरीरस्य सति ध्वननाख्यात्मनि काव्यरूपताव्यवहारः।[11]

वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक ने काव्य के स्वरूप का वर्णन करते हुए उसके व्युत्पत्तिमूलक अर्थ पर विचार किया और कहा कि कवि-कर्म को काव्य कहते हैं :-

कवेः कर्म काव्यम् ।[12]

व्यक्तिविवेक के रचयिता महिमभट्ट ने स्वकाव्य-लक्षण में रस की अनिवार्यता का आख्यान करते हुए रसान्वित लक्षण की स्वस्थ परम्परा का प्रणयन किया :-

काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपेण न कस्यचिद्विमतिः ।[13]

काव्य की परिभाषा समुपस्थित करते हुए सरस्वतीकण्ठाभरण के रचयिता भोजराज ने यह मत स्थापित किया है कि दोष रहित और गुणयुक्त तथा अलङ्कारों से अलंकृत और विभूषित और रसान्वित या रसयुक्त रचना कर कवि कीर्ति और प्रीति (आनन्द) की प्राप्ति करता है :-

तत् (काव्यं) पुनः शब्दार्थयोः साहित्यमामन्ति ।

[6] काव्यादर्श, 1/10

[7] काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति,1/1/1

[8] काव्यालङ्कार, 2/1

[9] ध्वन्यालोक, 1/1

[10] भारतीय काव्यशास्त्र (संस्कृत) का इतिहास, पृष्ठ संख्या 98

[11] ध्वन्यालोक, 1/4 पर लोचन टीका, पृष्ठ संख्या 93

[12] वक्रोक्तिजीवित, वृत्ति 1/2

[13] व्यक्तिविवेक, 1/86

तद्यथा शब्दार्थौ सहितौ काव्यमिति ।[14]

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य-लक्षण में पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्य-लक्षण सम्बन्धी विविध तत्त्वों का पर्यालोचन करते हुए उसे नवीन तथ्यों से सम्पृक्त किया। उनके अनुसार दोष-रहित, गुण-युक्त, सामान्यत: अलङ्कार सहित और क्वचित् कदाचित् अलङ्कार विरहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। इस लक्षण में निम्नांकित तथ्यों का समावेश है-

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन: क्वापि ।[15]

अग्निपुराण के मत में काव्य शास्त्र और इतिहास से पृथक् है। शास्त्र शब्द प्रधान है और इतिहास इतिवृत्तात्मक किन्तु काव्य में अभिधाशक्ति की प्रधानता होती है। अर्थात् काव्य उस वाक्य समूह को कहते हैं, जिसमें अलङ्कार स्पष्टत: दिखाई पड़े तथा वह गुणों से युक्त एवं दोषों से रहित हो।[16] कविराज विश्वनाथ के मत में रस ही काव्य की आत्मा है अर्थात् काव्य के लिए रस अनिवार्य तत्त्व है :-

वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य। तेन विना तस्य काव्यत्वाभावस्य प्रतिपादितत्त्वात्। रस्यते इति रस:। इति व्युत्पत्ति योगाद्भावतदाभासादयोऽपि गृह्यते)।17

पण्डितराज जगन्नाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षण का खण्डन करते हुए अपना मत प्रस्तुत किया है । अपने काव्य लक्षण में उन्होने रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है :-

रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्। रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता। लोकोत्तरत्वं चाह्लादगतचमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेष:। कारणं च तदवच्छिन्ने भावनाविशेष: पुन: पुनरनुसन्धानमात्मा।18

इस प्रकार भरत मुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ प्रभृति काव्यशास्त्रियों ने स्वमतानुसार काव्य की परिभाषा दी है । काव्य के महत्त्व को स्वीकारते हुए सभी ने उसके प्रयोजन, हेतु, गुण, दोष इत्यादि की परिचर्चा की है ।

1.2.2 काव्य में "शास्त्र" शब्द का अर्थ

कवि की रचना काव्य है किन्तु, उस रचना के आधार पर जो काव्यात्मक अनुशासन निर्मित होता है, वह काव्यशास्त्र है। किसी भी काव्य का अनुशासन उस काव्य को सैद्धान्तिक स्वरूप प्रदान करता है, जिससे उस महनीय काव्य के गुण, रस, अलङ्कारादि से शिक्षा प्राप्त कर नवीन काव्य में उसका अनुप्रयोग किया जा सके। अतः काव्य में अनुशासन अर्थात् शास्त्रात्मकता आवश्यक है। 'शंसनात् शासनात् वा शास्त्रम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो शिक्षा प्रदान करे अथवा अनुशासित करे, वह शास्त्र है। दार्शनिक दृष्टि से जो नित्यकर्म में प्रवृत्त करता है और अनित्यकर्म से निवृत्त करता है, उसको भी शास्त्र कहा जाता है-

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा । पुंसा येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ॥

अर्थात् काव्यसम्बन्धी शास्त्र को काव्यशास्त्र पद से अभिहित किया जाता है। काव्य में शास्त्र शब्द का अभिप्राय काव्यसम्बन्धी नियामकता है। जैसे 'अनियमे नियमकारिणी' परिभाषा कहकर परिभाषा की व्युत्पत्तिपरकता प्रदर्शित की जाती है, ठीक वैसे ही काव्य में दोषों से निवृत्ति और काव्यगुण, अलङ्कार, रसादि में प्रवृत्ति ही काव्य में 'शास्त्र' पद को चरितार्थ करता है। इसमें भले ही अलङ्कार पद द्वारा शास्त्र शब्द का अर्थ लिया जाता था, तथापि शास्त्र शब्द का ग्रहण नहीं होता था। संस्कृत साहित्य के विकास के साथ काव्य के महत्त्व की वृद्धि हेतु सामान्य रूप से 'शास्त्र' शब्द का प्रयोग होने लगा। सामान्यतया 'शासनात् शास्त्रम्' शासन करने वाला होने से शास्त्र कहलाता है। शासन का अर्थ किसी कार्य में प्रवृत्त करना या किसी कार्य से निवृत करना है। वेद, स्मृति, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थ सत्कर्म में प्रवृत्त होने और असत्कार्यों से निवृत्त होने का आदेश देते हैं, इसलिए वे शास्त्र कहलाते हैं। काव्य का मुख्य प्रयोजन प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मात्र न होकर रसास्वादन या सद्यः परनिर्वृत्ति है। कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' होने से गूढ तत्त्व के 'शंसन' (वेदान्तदर्शन, 1) का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ भी शास्त्र कहलाते हैं। वेदान्त दर्शन के मतानुसार वे ब्रह्म के स्वरूप के सन्दर्भ में विचार करते हैं, शंसन करते हैं, इसलिए शास्त्र हैं। इसलिए इसी व्युत्पत्ति के अनुसार शासनात्मक न

[14] श्रृंगारप्रकाश, पृष्ठ संख्या 430

[15] काव्यप्रकाश, 1/4

[16] भारतीय काव्यशास्त्र (संस्कृत) का इतिहास, पृष्ठ संख्या 231

[17] साहित्य दर्पण 1/3 वृत्ति

[18] रसगङ्गाधर, पृष्ठ संख्या 4-5

होने पर भी अर्थात् विधि एवं प्रतिषेध से रहित होने पर भी किसी गूढ तत्त्व के प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ 'शास्त्र' पद से अभिहित हुए। इनके विविध नामों में अलङ्कारशास्त्र, काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र एवं साहित्यविद्या आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है।

1.2.3 काव्यशास्त्र के विविध नाम

काव्यशास्त्र आह्लादकत्व के साधन के रूप में परिगणित होता है। इसके विविध नाम हैं-

1.2.3.1 काव्यशास्त्र

काव्यात्मक शास्त्र को काव्यशास्त्र कहते हैं। जिसमें काव्यीय गुण, दोष, रीति, अलङ्कार, रस आदि का विवेचन है, वह काव्यशास्त्र है। काव्यशास्त्र का अर्थ काव्य का विज्ञान होता है अर्थात् काव्य का अध्ययन करना। यह एक ऐसा विशेष शास्त्र है जो काव्य के रचनात्मक, सांस्कृतिक और शैलीगत पहलुओं का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसके अन्तर्गत काव्यरचना, रस, छन्द, अलङ्कार, भाषा एवं भावनाओं का विश्लेषण होता है। इसके अध्ययन से काव्य के विभिन्न आयामों के अवबोध में सहायता प्राप्त होती है तथा इसे काव्य के सौन्दर्य, मर्म, अर्थ एवं शैली के अवबोध को भलीभाँति जाना जा सकता है। इसका अध्ययन साहित्य, संस्कृति एवं भाषाविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है।

1.2.3.2 साहित्यशास्त्र

हितकारक काव्य को साहित्य कहते हैं। साहित्यशास्त्र के विषय में कहा गया है - हितेन सह सहितम् सहितस्य भावः साहित्यम् अर्थात् जो हित के साथ होता है वह सहित कहलाता है और ऐसे सहित के भाव को साहित्य अभिधान से जाना जाता है। हितकारक भावों को शास्त्रीयरूपता प्रदान करने की विधि का व्याख्यान किया जाता है, जिसे साहित्यशास्त्र कहा जाता है-

साहित्यशास्त्रं सकलं यस्मादाविर्भूदिह ॥ साहित्यरूपिणं वन्दे पार्वतीपरमेश्वरम् ॥[19]

अर्थात् साहित्यशास्त्र से सबकुछ आविर्भूत है। ऐसे पार्वतीपरमेश्वर (वागर्थरूप) साहित्यरूप को नमस्कार है।

1.2.3.3 अलङ्कारशास्त्र -

जो शोभा का वर्धन करें, वह अलङ्कार है। "अलङ्क्रियते इति अलङ्कारः", "सौन्दर्यमलङ्कारः" आदि अलङ्कार पद की परिभाषा है। यह काव्यशास्त्र के पर्याय के रूप में ज्ञात होता है। काव्यलङ्कार के प्रणेता आचार्य भामह के अनुसार बिना अलङ्कार के जैसे किसी स्त्री का रूप अच्छा नहीं लगता है (न हि निर्भूषं कान्तमपि विभाति वनिताननम्) वैसे ही काव्य में बिना अलङ्कार के काव्य की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। अतः काव्य में अलङ्कार एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में ग्राह्य करने के कारण काव्यशास्त्र का अपर अभिधान अलङ्कारशास्त्र माना जाने लगा। इसी कारण भामह ने अपने काव्य का नाम काव्यालङ्कार रखा। अलङ्कारशास्त्र की प्रधानता के कारण ही काव्यालङ्कारसूत्र, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति आदि ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ।

1.2.3.4 क्रियाकल्प –

काव्यशास्त्र के विविध अभिधानों में क्रियाकल्प का भी विशेष महत्त्व है। महर्षि वात्स्यायन के कामसूत्र में काव्यशास्त्र को क्रियाकल्प, काव्यक्रियाकल्प अथवा काव्यकरणविधि कहा गया है। काव्यलङ्कार के प्रणेता आचार्य भामह ने काव्यक्रिया कहा है तो आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में क्रियाविधि के शब्द के साथ इसके लिए काव्यलक्षण पद का भी प्रयोग किया है। भामह ने काव्यलक्षण के स्थान पर काव्यलक्ष्म का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार काव्यशास्त्र के लिए काव्यालङ्कारशास्त्र, साहित्यालङ्कारशास्त्र तथा रसशास्त्र शब्द का भी प्रयोग किया गया है। काव्यलङ्कार, काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, काव्यादर्श, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, काव्यमीमांसा आदि ग्रन्थ इनके आधार स्तम्भ के रूप में परिगणित हैं।

1.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ध्वनिशास्त्र के प्रणेता कौन हैं -

 (क) अभिनवगुप्त (ख) आनन्दवर्धन (ग) मम्मट (घ) भामह

[19] काव्यसिद्धान्तकौमुदी, 1/1

2. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् किस आचार्य की परिभाषा है -

(क) भामह (ख) भरत (ग) दण्डी (घ) मम्मट

3. "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि" यह किसने कहा है-

(क) कुन्तक (ख) मम्मट (ग) अभिनवगुप्तपादाचार्य (घ) आनन्दवर्धन

4. नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य कौन हैं-

(क) विश्वनाथ (ख) पण्डितराज जगन्नाथ (ग) भरत (घ) मम्मट

5. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' किस आचार्य की उक्ति है-

(क) भामह (ख) पण्डितराज जगन्नाथ (ग) विश्वनाथ (घ) मम्मट

6. रसगङ्गाधर के प्रणेता आचार्य का नाम बताइए -

(क) दण्डी (ख) पण्डितराज जगन्नाथ (ग) भरत (घ) मम्मट

7. काव्यमीमांसा के प्रणेता आचार्य कौन हैं -

(क) राजशेखर (ख) पण्डितराज जगन्नाथ (ग) भरत (घ) मम्मट

8. दशरूपक के प्रणेता कौन हैं -

(क) धनञ्जय (ख) धनिक (ग) भरत (घ) मम्मट

9. "प्रवृतिर्वा निवृतिर्वा ......तच्छास्त्रमभिधीयते" किसकी परिभाषा है -

(क) शास्त्र की (ख) काव्य की (ग) नाट्य की (घ) इनमें से सभी की

10. इनमें से काव्य की परिभाषा कौन सी है-

(क) मनोरञ्जनं काव्यम् (ख) कवेः कर्म काव्म् (ग) सौन्दर्यं काव्यम् (घ) ये सभी

1.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. काव्य में शास्त्र शब्द का अर्थ बताइए।
3. 'कवेः कर्म काव्यम्' की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
4. अलङ्कारशास्त्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. साहित्यशास्त्र पर टिप्पणी कीजिए।

1.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. काव्यशास्त्र के विविध अभिधानों की समीक्षा कीजिए।
2. काव्यशास्त्र को क्रियाकल्प कहने का अभिप्राय समझाइए।
3. विविध काव्य लक्षणों की समीक्षा कीजिए।
4. काव्य के दशाङ्गों का निरूपण कीजिए।
5. काव्यशास्त्रीय विशिष्ट ग्रन्थ एवं उनके प्रणेताओं की समीक्षा कीजिए।

इकाई 2 – प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्य-

2.2.1 भरत

2.2.2 भामह

2.2.3 मेधाविरुद्र

2.2.4 रुद्रट

2.2.5 वामन

2.2.6 दण्डी

2.2.7 मम्मट

2.2.8 राजशेखर

2.2.9 विश्वनाथ

2.2.10 पण्डितराज जगन्नाथ

2.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

2.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों यथा - भरत, भामह, मेधाविरुद्र, दण्डी, वामन, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों के व्यक्तित्व का अवबोध कर सकेंगे।
- प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों यथा - भरत, भामह, मेधाविरुद्र, दण्डी, वामन, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों के कृतित्व का अवबोध कर सकेंगे।
- प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों यथा - भरत, भामह, मेधाविरुद्र, दण्डी, वामन, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों के काल का अवबोध कर सकेंगे।
- प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों यथा - भरत, भामह, मेधाविरुद्र, दण्डी, वामन, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों के काव्यशास्त्रीय सामान्य सिद्धान्तों का अवबोध कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र में काव्यशास्त्रीय आचार्यों का योगदान अतीव महत्त्वपूर्ण है। प्रभुसम्मित एवं सुहृत्सम्मित उपदेशों के अतिरिक्त कान्तासम्मित सदृश उपदेश देने हेतु आचार्यो ने काव्यशास्त्रामृत परम्परा को विधिवत् सञ्चालित किया। इसका उद्देश्य था कि लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर निर्दुष्ट (अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असम्भव दोषों से रहित) लक्षण ग्रन्थों का निर्माण कर जनसामान्य को काव्यानन्द प्राप्त कराना। आचार्य भरत से लेकर आज तक यह परम्परा पल्लवित और पुष्पित हो रही है। इन ग्रन्थों में लक्ष्य ग्रन्थों से अनेक उदाहरण आचार्यों ने लिए हैं। हालाँकि पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगङ्गाधर के उदाहरण किसी लक्ष्य ग्रन्थ से न लेकर स्वयं ही रचे हैं।

2.2 प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्य

प्रमुख काव्यशास्त्रीय आचार्यों का संक्षिप्त परिचय यहाँ पर उद्धृत है-

2.2.1 आचार्य भरत –

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ऐसा ग्रन्थ है जो संस्कृत जगत् के काव्यशास्त्रीय उपलब्ध ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। यह ऐसे आदरणीय आचार्य हैं जिनके नाम पर भरतवाक्य का प्रयोग प्रत्येक नाटक में होता है। अभी तक जितने भी आचार्यों के नाम प्राप्त हुए हैं, उन काव्यशास्त्रीय आचार्यों में भरत मुनि सबसे प्राचीन आचार्य के रूप में विख्यात हैं। इनको काव्यशास्त्र का उद्भावक आचार्य भी कहा जाता है। इनको रस सम्प्रदाय का प्रवर्तक भी माना जाता है। "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" उनके द्वारा प्रणीत रससूत्र है। जिसकी व्याख्या में भट्टलोलट ने उत्पत्तिवाद, भट्टशङ्कुक ने अनुमितिवाद, भट्टनायक ने भुक्तिवाद एवं आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिव्यक्तिवाद का सिद्धान्त दिया है। नाट्यशास्त्र नामक महान् ग्रन्थ में 36 अध्याय हैं। भरत मुनि के काल का निर्धारण कर पाना कठिन है, फिर भी कुछ विद्वान् उनका समय ५०० विक्रम पूर्व से लेकर प्रथम शताब्दी के बीच में मानते हैं। नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्तपादाचार्य ने 'अभिनवभारती' नाम की व्याख्या का प्रणयन किया जो अतीव प्रसिद्ध हुई। अभिनवभारती ने नाट्यशास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों का अवबोध कराने में अत्यधिक सहायता की है। नाट्यशास्त्र के अनेक टीकाकार हैं। 'संगीतरत्नाकर 'के लेखक शाङ्र्गदेव ने नाट्यशास्त्र के छह टीकाकारों का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है -

व्याख्यातारो भारती ये लोल्लटोद्भटशंकुकाः।

भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमान् कीर्तिधरौ परः ॥ १ ॥

परंतु उनमें से अभिनव भारती को छोड़कर अन्य कोई टीका ग्रन्थ नहीं प्राप्त हुआ है।[20]

2.2.2 भामह –

भामह कश्मीर के निवासी थे। काव्यालङ्कार के प्रणेता आचार्य भामह ने इस ग्रन्थ की रचना करके अलङ्कार प्रस्थान का प्रणयन किया। यह विशुद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के रूप में ग्राह्य है, क्योंकि नाट्यशास्त्र मुख्यतः दृश्यकाव्यशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है। "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" यह काव्य का लक्षण सर्वप्रथम भामह ने ही दिया था। काव्यालङ्कार के छह परिच्छेदों के प्रायः 400 श्लोकों में मुख्य रूप से पाँच विषयों का वर्णन है- काव्यशरीर, अलङ्कार, दोष, न्याय तथा शब्दशुद्धि।[21] में इन्होंने 38 अलङ्कारों का परिचय दिया है। काव्यलङ्कार ग्रन्थ पर उद्भट ने भामहविवरण नामक टीका लिखी थी। भामह को मुख्य रूप से काव्यशास्त्र में अलङ्कार सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। भामह के काल का निर्धारण कर पाना भी एक कठिन कार्य है। भरतमुनि के समान इनका समय भी अज्ञात ही है, फिर भी विद्वानों ने इनका समय षष्ठ शतक का पूर्वार्द्ध माना है। सामान्यतः इन्हें आचार्य दण्डी का पूर्ववर्ती माना जाता है, भामह ने काव्यशास्त्र विषयक काव्यालङ्कार ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जो कि छ: परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में 60 श्लोक हैं, द्वितीय और तृतीय परिच्छेद में 160 श्लोक हैं, इन दोनों परिच्छेदों में अलङ्कारों का वर्णन है। चौथे परिच्छेद में दोषों का निरूपण किया गया है। पंचम परिच्छेद में न्याय का निरूपण है। इसमें 70 श्लोक है। षष्ठ परिच्छेद के 60 श्लोकों में शब्द शुद्धि का विवेचन किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्यालङ्कार में 400 श्लोक हैं। भामह ने स्वयं इसका विवरण दिया है –

[20] काव्यप्रकाश व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, पृष्ठ संख्या 12

[21] संस्कृत साहित्य का इतिहास, उमाशंकर शर्मा ऋषि, पृष्ठ संख्या 578

षष्ठ्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ठ्या त्वलङ्कृति:

पञ्चाशता दोषदृष्टि: सप्तत्या न्याय निर्णयः।

षष्ठ्या शब्दस्य शुद्धि: स्यादत्येव वस्तु पञ्चक

उक्तं षड्भि: परिच्छेदै: भामहेन क्रमेण वः ॥

2.2.3 मेधाविरुद्र -

मेधाविरुद्र प्रसिद्ध काव्य शास्त्रीय आचार्य हैं। इनका एक अन्य नाम मेधावी भी है। इन्होंने उपमा आदि के दोषों के विवेचन का सिद्धान्त दिया है। 1.हीनता 2.असंभव 3.लिंगभेद 4.वचनभेद 5. विपयर्य 6.उपमानाधिक्य 7. उपमानसादृश्य इन सात प्रकार के उपमा दोषों का निरूपण किया है। इनके जिस सिद्धान्त की चर्चा उत्तरवर्ती साहित्य में पाई जाती है, वह है शब्दों का चतुर्धा विभाजन। मेधाविरुद्र ने कर्मप्रवचनीय को छोड़कर नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात ये चार ही विभाग किये हैं। परंतु दुर्भाग्य से इनके द्वारा रचित न ही काव्यशास्त्र पर और न ही अलङ्कार शास्त्र पर लिखा गया कोई ग्रन्थ उपलब्ध होता है। अन्य आचार्यों ने इनके विषय में जो लिखा है उन्हीं के आधार पर इनके सिद्धान्तों की परिचर्चा की जाती है।[22]

2.2.4 रुद्रट -

अलङ्कार संप्रदाय के अनुयायी आचार्यों में रुद्रट एक प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका एक अन्य नामक शतानन्द भी है। इनके पिता का नाम भट्टवामुक था। यह कश्मीरी थे । इनके वंश का परिचय निम्नलिखित श्लोक में प्राप्त होता है –

'शतानन्दपराख्येन भट्टवामुकसूनुना ।

साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम् ।।'।

(काव्यालङ्कार 5 ।12-14 की टीका)

इनका समय नवम शताब्दी के लगभग माना जाता है । काव्यशास्त्री रुद्रट श्रृंगार तिलक नामक ग्रन्थ के लेखक रुद्र या रुद्रट से भिन्न हैं। रुद्रट का एक मात्र उपलब्ध ग्रन्थ काव्यालङ्कार है जिसमें अलङ्कारों का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ में 16 अध्याय तथा 714 श्लोक हैं जो की आर्या छन्द में रचित है। इस ग्रन्थ के शुरुआत के 11 अध्यायों में अलङ्कारों तथा शेष अन्तिम अध्यायों में रसों की मीमांसा की गयी है। इन्होंने 9 रसों के बाद 'प्रेय 'नामक 10 वें रस की कल्पना की है । इन्होंने चार नवीन अलङ्कार भाव की कल्पना की है-

1. मत
2. साम्य
3. पिहित
4. भाव

इनके ग्रन्थ काव्यालङ्कार पर वल्लभ देव, नमिसाधु तथा आशाधर के द्वारा टीकाएँ मिलती हैं । पहली टीका रुद्रटालङ्कार है जो कि वल्लभ देव द्वारा रचित है जो सम्प्रति प्राप्त होती है। दूसरी टीका जैन विद्वान् नमिसाधु की है, जो उपलब्ध है। तीसरी टीका जैन यति आशाधर की है। इनका समय 13वीं शताब्दी है।

2.2.5 वामन

वामन काव्यशास्त्र के इतिहास में रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। ये जयादित्य के मंत्री थे। जयादित्य का समय 769 ई. से 813 ई. तक स्वीकार किया जाता है। वामन का समय भी आठवीं शताब्दी के अन्त में और नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में माना जाता है। वामन ने काव्यालङ्कारसूत्र नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में पाँच अधिकरण हैं। प्रत्येक अधिकरण में दो या तीन अध्याय हैं। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है। काव्यालङ्कारसूत्र ग्रन्थ के प्रथम अधिकरण का नाम शरीराधिकरण है इसमें तीन अध्याय हैं। द्वितीय अधिकरण का

[22] काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ संख्या 23

नाम दोषदर्शनाधिकरण है। इसमें दो अध्याय है। तृतीय अधिकरण का नाम गुण विवेचन अधिकरण है, इसमें भी दो अध्याय हैं। चतुर्थ अधिकरण का नाम प्रयोगाधिकरण है, इसमें दो अध्याय हैं। वामन ने स्वयं ही अपने ग्रन्थ पर कविप्रिया नाम की वृत्त लिखी। इसलिए इस ग्रन्थ का नाम काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्ति कहा जाता है।

2.2.6 दण्डी

भामह के पश्चात् काव्यशास्त्रीय आचार्यों में दण्डी एक प्रसिद्ध आचार्य हैं। इन्होंने काव्यशास्त्र विषयक ग्रन्थ 'काव्यादर्श' का प्रणयन किया । दण्डी के विषय में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है । इनके जीवन चरित और रचनाओं के विषय में जानकारी का एकमात्र आधार अवन्तिसुन्दरीकथा है। जिसमें उन्होंने स्वयं को महाकवि भारवि का प्रपौत्र बताया है। भारवि का एक अन्य नाम दामोदर भी माना जाता है । इनके पुत्र मनोरथ थे । मनोरथ के चार पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र वीरदत्त के पुत्र दण्डी थे। इनकी माता का नाम गौरी था । दण्डी के बाल्यावस्था में ही उनके माता-पिता गोलोकवासी हो गये । चालुक्य नरेश द्वारा काञ्ची पर आक्रमण के कारण दण्डी आत्मरक्षा के लिए वहाँ से निकल गये और इधर-उधर घूमते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त करते रहे । नरसिंह वर्मा प्रथम द्वारा काञ्ची पर अधिकार के पश्चात् दण्डी काञ्ची वापस आ गये और वहीं अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया। दण्डी द्वारा प्रणीत ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-

1. काव्यादर्श
2. अवन्तिसुन्दरीकथा
3. दशकुमारचरितम्
4. छन्दोविचिति
5. कलापरिच्छेद
6. द्विसन्धान काव्य

इन ग्रन्थों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है-

1. **काव्यादर्श** - दण्डी का प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यादर्श है । इसकी प्रसिद्धि का प्रमाण यह है कि इसका सिंहली और तिब्बती भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। इस ग्रन्थ में चार परिच्छेद हैं। इसके प्रथम परिच्छेद में काव्य का लक्षण, उसके भेद, रीति और गुणों का विस्तृत वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद में अलङ्कारों का सामान्य लक्षण के पश्चात् 35 अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण हैं। तृतीय परिच्छेद में यमक अलङ्कार का सविस्तार वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद में दस प्रकार के दोषों के लक्षण और उदाहरणों का विवेचन किया गया है।

2. **अवन्तिसुन्दरी कथा** - दण्डी की इस रचना को लेकर विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस रचना का लेखक दण्डी न हो कर दण्डी उपनाम वाले किसी अन्य व्यक्ति को मानते हैं। इस कथा का प्रारम्भ श्लोक से होता है जिसमें अनेक कवियों के नाम दिये गये हैं, जिसके पश्चात काञ्ची नगरी का वर्णन है और दण्डी की आत्मकथा भी है। इस के बाद अवन्तिसन्दरी कथा का प्रारम्भ होता है ।

3. **दशकुमारचरितम्** - इस कृति में आठ उच्छवास हैं जिसमें दस राजकुमारों का अपने देश- देशान्तरों में भ्रमण उनके विचित्र अनुभवों और उनके दु:साहसों का मनोरञ्जक वर्णन किया गया है ।

4. **छन्दोविचित** - काव्यादर्श में दण्डी ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।

पद्यं चतुष्पदी तच्च, वृत्तिर्जातिरिति द्विधा ।11

छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शित:।12 (काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद 11,12)

5. **कलापरिच्छेद**- इस ग्रन्थ का भी उल्लेख काव्यादर्श में है-

इत्थं कलाचतु:षष्टिविरोध: साधु नीयताम्।

तस्या: कलापरिच्छेदे रूपमाविर्भविष्यति।।

(काव्यादर्श, परिच्छेद 3-17)

6. **द्विसन्धान काव्य-** दण्डी के इस कृति का उल्लेख भोज के श्रृङ्गारप्रकाश में मिलता है। आचार्य दण्डी गद्य शैली के सिद्धहस्त कवि हैं। दण्डी के शैली की विशेषता अर्थों की स्पष्टता, रसों की अभिव्यक्ति, कल्पना की सजीवता और पदों का लालित्य मुख्य रूप से है। इनकी शैली में विरोधी गुणों का समन्वय दिखाई पड़ता है। इनकी शैली वाच्यार्थ प्रधान होने के साथ-साथ प्राञ्जल, प्रौढ़, अलङ्कारों तथा व्यङ्ग्यार्थ प्रधान भी है। इनका पदलालित्य परवर्ती रचनाकारों द्वारा अनुकरणीय है। दण्डिन: पदलालित्यम् यह दण्डी की महत्ता को प्रदर्शित करती है। रीति के स्थान पर दण्डी ने मार्ग शब्द का प्रयोग किया है।[23]

2.2.7 राजशेखर –

संस्कृत साहित्य में कवि राजशेखर प्रसिद्ध नाटककार एवं काव्यशास्त्र के सूक्ष्म विवेचक भी थे। इनका समय दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में माना जाता है। यह विदर्भ देश के निवासी थे। कन्नौज इनका कार्यक्षेत्र रहा है। कन्नौज के प्रतिहार वंश के राजा महीपाल तथा महेन्द्र पाल इनके शिष्य थे। इन्होंने स्वयं को यायावर पद से अभिहित किया है। इससे ज्ञात होता है कि ये यायावर गोत्र में उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह का नामक अकाल जलद था। माता का नाम शीलवती तथा पिता का नाम दुर्दुक था। इन्हें कवित्त और शास्त्रीय प्रतिभा दोनों ही अपने वंश परम्परा से प्राप्त हुई। इनकी पत्नी अवंतिसुंदरी भी कवित्व शक्ति से सम्पन्न थी। राजशेखर के ग्रन्थों में काव्यमीमांसा ही साहित्यशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। काव्यमीमांसा में 28 अध्याय है। प्रथम अध्याय का नाम शास्त्रसंग्रह, द्वितीय अध्याय का नाम शास्त्रनिर्देश तृतीय अध्याय का नाम काव्यपुरुषोत्पत्ति तथा चतुर्थ अध्याय का नाम पदवाक्यविवेक है। इस प्रकार उनके सभी अध्यायों का नाम वर्ण्यविषय विशेष पर आश्रित हैं।

2.2.8 आचार्य मम्मट

आचार्य मम्मट काव्यशास्त्र के सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय आचार्य हैं। इनका निवास स्थान कश्मीर प्रदेश था। काव्यप्रकाश के व्याख्याकारों में अन्यतम सुधा सागर के टीकाकार भीमसेन ने मम्मट को कश्मीर के वासी जैय्यट का पुत्र बताया है। काव्यप्रकाश के रचना के विषय में कुछ समीक्षक प्रतिपादित करते हैं कि काव्य प्रकाश के दो रचनाकार हैं- प्रथम ने रचना प्रारम्भ करके कुछ अज्ञात कारणों से बीच में छोड़ दिया तथा दूसरे ने उस रचना को पूरा किया। वें दो लेखक हैं मम्मटाचार्य और अल्लटसूरि। परंतु कौन सा अंश मम्मट ने लिखा और कौन सा अल्लट ने; यह ज्ञात नहीं है, परंतु काव्यनिदर्शनाकार आनन्द लिखते हैं-

कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः ।

ग्रन्थःसम्पूरितः शेषं विधायाल्लटसूरिणा ॥

इससे ज्ञात होता है कि मम्मटचार्य ने परिकरालङ्कार तक तथा अल्लटसूरि ने शेष भाग को पूरा किया। किन्तु कुछ समीक्षकों के अनुसार सम्पूर्ण काव्यप्रकाश के प्रणयनकर्ता मम्मटाचार्य ही है। इस प्रकार काव्यप्रकाश के प्रणेता के विषय में बहुत से विप्रतिपत्तियाँ प्रचलित हैं। गीता के बाद काव्यप्रकाश ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसकी सबसे अधिक टीकाएँ प्राप्त होती हैं। काव्यप्रकाश की लगभग 75 टीकाएँ प्राप्त होती हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ काव्यशास्त्रियों के बीच सर्वाधिक प्रसिद्ध है। दश उल्लासों में लिखे गये इस ग्रन्थ का अनुवाद कई भाषाओं में किया गया है।

2.2.9 विश्वनाथ –

कविराज विश्वनाथ ने अलङ्कार शास्त्र विषयक साहित्य दर्पण नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इनके पिता का नाम श्री चंद्रशेखर तथा पितामह का नाम नारायण दास था। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण के प्रथम परिच्छेद की पुष्पिका में स्वयं को अष्टादशभाषावारविलासिनीभुजंगम् कहा है। इससे ज्ञात होता है कि विश्वनाथ 18 भाषाओं के विद्वान् थे। साहित्य दर्पण के चतुर्थ परिच्छेद में' अल्लवुद्दीन नृपतौ न सन्धिर्न च वय: इस श्लोक में यवनराज अलाउद्दीन खिलजी का नाम लिया गया है। अलाउद्दीन का राज्य काल 1296 ई. से 1316 ई. तक था। अतएव विश्वनाथ का समय भी उसके अनन्तर ही होना चाहिए। साहित्य दर्पण 10 परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में काव्य लक्षण और काव्य प्रयोजन का निरूपण है, दूसरे परिच्छेद में शब्द शक्ति का निरूपण, तृतीय परिच्छेद में रस और नायक नायिका का निरूपण किया गया है, चतुर्थ परिच्छेद में ध्वनि काव्य के भेद, गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य का निरूपण हुआ है। पञ्चम परिच्छेद में आचार्य विश्वनाथ ने ध्वनि विरोधी मतों का खण्डन कर ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की। छठवें परिच्छेद में नाट्य विषयों का निरूपण है। सप्तम परिच्छेद में काव्य

[23] वहीं, पृष्ठ संख्या 579

दोष का, अष्टम में काव्य गुणों का तथा रीतियों का वर्णन किया गया है। नवम परिच्छेद में शब्दालङ्कारों का तथा दशम परिच्छेद में अर्थालङ्कारों का निरूपण है।

2.2.10 पण्डितराज जगन्नाथ –

पण्डितराज जगन्नाथ एक प्रसिद्ध नैसर्गिक प्रतिभा से युक्त काव्यशास्त्रीय आचार्य थे। यह एक तैलङ्ग ब्राह्मण थे, इनकी माता का नाम लक्ष्मी देवी तथा पिता का नाम पेरूभट्ट था, यह यवन राज शाहजहाँ के यहाँ राज्यसभा में मुख्य पण्डित थे। उन्होंने लवङ्गी नमक यवन कन्या से विवाह किया। जगन्नाथ ने काव्यशास्त्र विषयक ग्रन्थ रसगङ्गाधर का प्रणयन किया। इनके ग्रन्थ की यह एक प्रमुख विशेषता है कि इसके सभी उदाहरण पण्डित राज जगन्नाथ ने स्वयं बनाए हैं। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं-

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं,

काव्यम् मयात्र विहितं न परस्य किञ्चित् ।

किं सेव्यते सुमनसां मनसा अपि गन्ध:

कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ॥

2.3 **अभ्यासार्थ प्रश्न**

2.3.1 **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

1. नाट्यशास्त्र किसकी रचना है?

   (क) भामह (ख) दण्डी (ग) भरतमुनि (घ) राजशेखरग्

2. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कितने अध्याय हैं-

   (क) 35 (ख) 40 (ग) 32 (घ) 36

3. भरतमुनि के रस सूत्र की व्याख्या निम्नलिखित में किसके द्वारा नहीं की गई है?

   (क) भट्टलोल्लट (ख) भट्टशङ्कुक (ग) भट्टनायक (घ) रुद्रट

4. **आचार्य** भामह द्वारा रचित काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है -

   (क) काव्यादर्श (ख) काव्यालङ्कार (ग) काव्यमीमांसा (घ) काव्यप्रकाश

5. इनमें से कौन सी रचना दण्डी की नहीं है-

   (क) अवन्तिसुन्दरीकथा (ख) दशकुमारचरितम् (ग) काव्यादर्श (घ) काव्यालङ्कार

6. दण्डी का काव्यादर्श कितने परिच्छेदों में विभक्त है -

   (क) 3 (ख) 4 (ग) 6 (घ) 9

7. रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं-

   (क) वामन (ख) भामह (ग) भरतमुनि (घ) दण्डी

8. शतानन्द किसका एक अन्य नाम है-

   (क) रुद्रभट्ट (ख) उद्भट (ग) रुद्रट (घ) वामन

9. मम्मटाचार्य का ग्रन्थ काव्यप्रकाश कितने उल्लासों में विभक्त है -

   (क) 8 (ख) 10 (ग) 12 (घ) 16

10. इनमें से कौन यायावर वंश में उत्पन्न आचार्य हैं -

    (क) राजशेखर (ख) मम्मटाचार्य (ग) आनन्दवर्धन (घ) रुद्रट

2.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य आनन्दवर्धन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. आचार्य विश्वनाथ के कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
3. आचार्य मम्मट के काव्य प्रकाश का निरूपण कीजिए।
4. राजशेखर का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।
5. आचार्य रुद्रट का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. पण्डितराज जगन्नाथ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए।
2. आचार्य दण्डी के व्यक्तित्व व कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. मेधाविरुद्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए।
4. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।
5. आचार्य भामह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विवेचना कीजिए।

इकाई 3 - काव्य-सम्प्रदायों का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 काव्य-सम्प्रदायों का सामान्य परिचय

3.2.1 रस-सम्प्रदाय

3.2.2 अलङ्कार सम्प्रदाय

3.2.3 रीति सम्प्रदाय

3.2.4 वक्रोक्ति सम्प्रदाय

3.2.5 ध्वनि सम्प्रदाय

3.2.5 औचित्य सम्प्रदाय

3.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

3.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

3.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- काव्य सम्प्रदाय का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रस-सम्प्रदाय के बारे में जान सकेंगे।
- अलङ्कार-सम्प्रदाय के विषय में अवगत हो सकेंगे।
- ध्वनि-सम्प्रदाय ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वक्रोक्ति-सम्प्रदाय का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- औचित्य-सम्प्रदाय की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रीति-सम्प्रदाय का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

काव्य में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की स्थापना काव्यात्मभूत तत्त्वों के विषय में मतों की भिन्नता के कारण हुई है। जिन आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना, वे रस-सम्प्रदाय के अन्तर्गत परिगणित हुए, जो अलङ्कारों को काव्यात्म रूप माने वे अलङ्कार-सम्प्रदाय के अनुयायी कहे गए, रीति को काव्यात्मा मानने वाले रीति सम्प्रदाय एवं ध्वनि को काव्य की आत्मा मानने वाले ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायी तथा वक्रोक्ति को काव्यात्मा मानने पर वक्रोक्ति सम्प्रदाय के अनुयायी कहे गए। समय के साथ आत्मा की समीक्षा में मतभिन्न होने से नवीन संप्रदायों की उत्पत्ति हुई तथा कुछ आचार्यों ने अन्य संप्रदायों को अन्य संप्रदायों में अन्तर्भूत भी किया। इस प्रकार मुख्य रूप से 6 सम्प्रदायों को आचार्य बलदेव

उपाध्याय ने माना है। वक्रोक्ति और गुण को एक और ध्वनि और औचित्य सम्प्रदाय को एक ही सम्प्रदाय में परिवर्तित किया है।

3.2 काव्य-सम्प्रदायों का सामान्य परिचय

काव्यशास्त्र के इन छः सम्प्रदायों के नाम एवं उनके प्रवर्तक आचार्य निम्नलिखित हैं-

१. रससम्प्रदाय - भरतमुनि

२. अलङ्कार सम्प्रदाय - भामह उद्भट तथा रुद्रट

३. रीति / गुण सम्प्रदाय - दण्डी तथा वामन

४. वक्रोक्ति सम्प्रदाय - कुन्तक

५. ध्वनि सम्प्रदाय - आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट

६. औचित्य सम्प्रदाय - क्षेमेन्द्र

इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है-

3.2.1 रस सम्प्रदाय

नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रमुख तत्त्व के रूप में रस की गणना की जाती है। राजशेखर के अनुसार नन्दिकेश्वर ने ब्रह्मा से उपदेश पाकर सर्वप्रथम रस के निरूपण का सिद्धान्त दिया किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। रस-सिद्धान्त या रस-सम्प्रदाय का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही प्राप्त होता है और आचार्य भरत इसके प्रथम और सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं। नाट्यशास्त्र के षष्ठ तथा सप्तम अध्याय में रस और भाव का जो निरूपण प्रस्तुत है, वह साहित्य संसार में एक अपूर्व वस्तु के रूप में विख्यात है। भरत मुनि के काल में नाट्य रस की विस्तृत, व्यापक और सम्पूर्ण रूप से उत्पत्ति प्राप्त होती है। रस सम्प्रदाय का मूलभूत सूत्र है- 'विभावानुभावसञ्चारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति या उत्पत्ति होती है। भरत मुनि के इस रससूत्र पर चार आचार्यों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। जिनके नाम एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. भट्टलोल्लट - उत्पत्तिवाद
2. भट्टशङ्कुक - अनुमितिवाद
3. भट्टनायक - भुक्तिवाद
4. अभिनवगुप्त - अभिव्यक्तिवाद

भट्टलोल्लट उत्पत्तिवादी आचार्य हैं, ये रस को विभावादि का कार्य मानते हैं। शंकुक अनुमितिवादी आचार्य हैं, ये विभावादि के द्वारा रस की अनुमिति मानते हैं और विभावादि और रस में अनुमाप्य-अनुमापक भाव सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। भट्टनायक भुक्तिवादी आचार्य हैं उनके अनुसार विभावादि का रस के साथ भोज्य-भोजक भाव सम्बन्ध होता है, जिसकी सिद्धि के लिए उन्होंने अभिधा के अतिरिक्त भावकत्व एवं भोजकत्व नामक दो व्यापारों को स्वीकार किया है। अभिनवगुप्त अभिव्यक्तिवादी आचार्य हैं, उन्होंने रस को मनोवैज्ञानिक तरीके से व्याख्यायित करते हुए कहा है कि समस्त स्थायीभाव वासनारूप में सहृदयों के हृदय में विद्यमान रहते हैं। विभावादिकों के द्वारा ही यह सुप्त स्थायीभाव अभिव्यक्त होकर आनन्दमय रस को प्राप्त कर लेते हैं।

रस की संख्या के सन्दर्भ में आलङ्कारिक आचार्यों में मतभेद है। आचार्य भरत ने 8 रस माना है-

1)	श्रृंगार	2)	हास्य
3)	करुण	4)	रौद्र
5)	वीर	6)	भयानक
7)	वीभत्स	8)	अद्भुत

आचार्य भरत और धनञ्जय ने नाटक में शान्त रस की स्थिति को स्पष्टतया सङ्केत नहीं किया है। 'शममपि केचित् प्राहु: पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य' (दशरूपक 4/35) रुद्रट ने प्रेयान् को भी रस की संज्ञा प्रदान की है। लौकिक संस्कृत का प्रथम श्लोक जो क्रौञ्चवध से मर्माहत होकर महर्षि वाल्मीकि को स्फुरित हुआ, वह रसमय ही था। रस को सम्भवतः सभी आचार्यों तथा सम्प्रदायों ने अपने सिद्धान्तों के बाद अवश्य स्वीकार किया ही है। रस की रसमयता सबको प्रिय है। सहृदय के आह्लादकत्व हेतु सभी आचार्यों ने रस को किसी न किसी रूप में अवश्य ही स्वीकार किया है। निरस को सरस बनाना भी काव्यशास्त्र का निहितार्थ है।

3.2.2 अलङ्कार सम्प्रदाय -

अलङ्कार मत के प्रधान प्रवर्तक आचार्य भामह माने जाते हैं और इसके पोषक भामह के टीकाकार उद्भट और रुद्रट भी हैं। दण्डी को भी अलङ्कार की प्रधानता किसी न किसी रूप में स्वीकृत थी। इस सम्प्रदाय के अनुसार अलङ्कारों को ही काव्य की आत्मा माना जाता है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी भी रस की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु उसे प्रमुखता नहीं देते हैं। इनके मतानुसार काव्य का जीवनाधायक तत्त्व अलङ्कार ही है । आचार्य जयदेव ने चन्द्रालोक में कहा है-

अङ्गीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ॥

अर्थात् अलङ्कार से रहित काव्य ऊष्णता से रहित अग्नि के समान हो जाता है। इस प्रकार अलङ्कार का विकास धीरे-धीरे होता आया है। भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में चार ही अलङ्कारों का निर्देश मिलता है। यमक, उपमा, रूपक एवं दीपक ये ही मूल अलङ्कार हैं, जिनमें एक शब्दालङ्कार तथा तीन अर्थालङ्कार हैं। अलङ्कार मत मानने वाले आचार्यों को रस तत्त्व अज्ञात नहीं था किन्तु उन्होंने इसे स्वतन्त्र स्थान न देकर इसका अन्तर्भाव रसवदलङ्कारों में करते हैं-

1. रसवत्
2. प्रेय
3. ऊर्जस्विन्
4. समाहित

इन चारों अलङ्कारों के आभ्यन्तर में रस और भाव का समग्र विषय भामह के द्वारा अन्तर्निविष्ट किया गया है। दण्डी भी रसवत् अलङ्कार से परिचित हैं। उन्होंने आठ रस और आठ स्थायी भावों का निर्देश किया है। वें प्रतीयमान अर्थ से भी परिचित हैं, जिसे समासोक्ति और आक्षेप आदि अलङ्कारों में अन्तर्भूत माना है।

3.2.3 रीति सम्प्रदाय -

रीति सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य वामन हैं। उनके मत में रीति ही काव्य की आत्मा है- 'रीतिरात्मा काव्यस्य '। पदों की विशिष्ट रचना ही रीति है। रीतितत्त्व काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। जिसका शाब्दिक अर्थ प्रगति, शैली, पद्धति या मार्ग है। रीति का काव्य में वही स्थान है जो शरीर में आङ्गिक सङ्गठन का है । जिस प्रकार अवयवों का उचित सन्निवेश शरीर की शोभा को परिवर्धित करता है। उसी प्रकार वर्णों का उचित प्रयोग शब्द रूपी शरीर और अर्थ रूपी आत्मा की शोभा को बढ़ाता है। रचना में यह विशिष्टता गुणों के कारण उत्पन्न होती है। रीति गुणों पर अवलम्बित रहती है। रीति मत को गुण सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। वामन ने गुणों को शब्दगत तथा अर्थगत मानकर उनकी संख्या द्विगुणित कर दी है। इनके अनुसार गुण दस हैं-

1. ओज
2. प्रसाद
3. श्लेष
4. समता
5. कान्ति
6. समाधि
7. माधुर्य
8. सौकुमार्य
9. उदारता
10. अर्थव्यक्ति

आचार्य वामन के अनुसार काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले अथवा करनेवाले गुण हैं और अतिशय करनेवाले धर्म अलङ्कार हैं- "काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा:, तदतिशयहेतवोऽलङ्कारा:' ॥

वामन ने इन दो सूत्रों के द्वारा गुण और अलङ्कारों के भेद को स्पष्ट करते हुए अलङ्कारों की अपेक्षा गुण को विशेष महत्त्व दिया है। अलङ्कार सम्प्रदाय की अपेक्षा इस सम्प्रदाय की आलोचना दृष्टि गहरी रही है।

3.2.4 वक्रोक्ति सम्प्रदाय

वक्रोक्ति दो शब्दों 'वक्र' और 'उक्ति' से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है-टेढ़ा कथन अर्थात् जो लक्षणा शब्द शक्ति से युक्त हो। यह केवल वाक् चातुर्य ही नहीं, कवि कौशल है । वक्रोक्ति-सिद्धान्त की परम्परा प्राचीन है । भामह ने वक्रोक्ति को एक अलङ्कार के रूप में स्वीकार किया है । इसके परवर्ती आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को एक सिद्धान्त के रूप में विकसित कर उसमें काव्य के समस्त अङ्गों को समाहित कर लिया, इस कारण से वक्रोक्ति सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य कुन्तक को जाता है। इनका समय दशम शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' है । जिसमें कारिका, वृत्ति और उदाहरण तीन भाग हैं । यह ग्रन्थ चार उन्मेषों में विभक्त है । उन्होंने अपने इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में वक्रोक्ति के स्वरूप और उसके प्रकारों का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है । उनके अनुसार वक्रोक्ति का अर्थ है -

"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ।" वक्रोक्तिजीवितम् 1.10

इस प्रकार वक्रोक्ति का अभिप्राय है कवि के कर्म वैदग्ध्य से उद्भूत चारुताश्रित कथन प्रकार। उन्होंने अपने ग्रन्थ में वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा कहा है। कुन्तक ने काव्य रीति की प्रधानता को समाप्त कर वक्रोक्ति की स्थापना की-

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।

यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोलङ्कारोऽनया विना ॥ भामह काव्यलङ्कार २/८५

इसी प्रकार दण्डी ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श (2/363) में वक्रोक्ति के विषय में कहा है- 'भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्। यह उक्ति वक्रोक्ति के महत्त्व को प्रतिपादित करती है। वक्रोक्तिकार ने अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्तों को भी परिमार्जित करके अपने यहाँ स्थान दिया है। वामन की पाञ्चाली, गौड़ी, वैदर्भी आदि रीतियाँ देश भेद के आधार पर मानी जाती हैं। वामन वैदर्भी रीति तथा कुन्तक सुकुमार मार्ग कहते हैं। इसी प्रकार कुन्तक ने गौड़ी रीति को विचित्र मार्ग तथा पाञ्चाली रीति को मध्यम मार्ग कहा है।

3.2.5 ध्वनि सम्प्रदाय -

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन माने जाते हैं। इनके मतानुसार 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' काव्य की आत्मा ध्वनि है। इन सभी सम्प्रदायों में ध्वनि सम्प्रदाय सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रबल सम्प्रदाय रहा है। ध्वनि सिद्धान्त का विरोध वैयाकरण, साहित्यिक, वेदान्ती, नैयायिक, मीमांसक सभी ने किया किन्तु काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने इन सबका खण्डन करके ध्वनि सिद्धान्त की पुनः स्थापना की। अतः इनको 'ध्वनि का प्रतिष्ठापक परमाचार्य' कहा जाता है। भरत मुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक लगभग 2000 वर्षों के दीर्घकाल में सम्प्रदायों का विकास व संघर्ष होता रहा है।

आनन्दवर्धन ने रसध्वनि को सर्वश्रेष्ठ ध्वनि माना है, जबकि अभिनवगुप्त रसध्वनि को ध्वनित या अभिव्यञ्जित मानते हैं। परवर्ती आचार्य मम्मट ने ध्वनि विरोधी मुकुल भट्ट, महिमभट्ट, कुन्तक आदि की युक्तियों का सतर्क खण्डन कर ध्वनि सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया। ध्वनि सिद्धान्त का मूल आधार स्फोटवाद का सिद्धान्त प्रतीत होता है क्योंकि आनन्दवर्धन ने वैयाकरणों को प्रथम विद्वान् कहा है। काव्यशास्त्र में ध्वनि का सम्बन्ध व्यञ्जना शक्ति से है। आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य की आत्मा का स्थानीय तत्त्व है- प्रतीयमान। आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं कि-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।। ध्वन्यालोक 1.13 ।।

अर्थात् जहाँ अर्थ अपने स्वरूप को एवं शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके प्रतीयमान अर्थ को प्रकट करता है उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि काव्य की संज्ञा प्रदान की है। ध्वनि के तीन स्वरूप माने गये हैं- एवं वस्त्वलङ्काररसभेदेन त्रिधाध्वनिः। अर्थात् वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि एवं रसध्वनि।

3.2.6 औचित्य सम्प्रदाय -

क्षेमेन्द्र औचित्य सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य के रूप प्रसिद्ध है। औचित्य को परिभाषित करते हुए वें लिखते हैं-

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।

उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते औचित्यविचारचर्चा ।।

क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रस का प्राण कहा है -

"औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।

रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुते अधुना ।।" **औचित्यविचारचर्चा**

औचित्य की भावना रस ध्वनि आदि समस्त काव्य तत्त्वो की मूल भावना है। समस्त प्राचीन आलङ्कारिकों ने औचित्य की रक्षा करने का सङ्केत अपने ग्रन्थों में किया है। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' लिखकर इस काव्यतत्त्व का व्यापक रूप स्पष्ट किया है। क्षेमेन्द्र ने साहित्यरसिकों पर महान् उपकार किया है। औचित्य को छोड़कर रसभङ्ग का दूसरा कारण नहीं है। रस का परम रहस्य पराउपनिषद् यही है। औचित्य से उसका निबन्धन किन्तु आनन्दवर्धन से भी बहुत पहले यह काव्य का मूल तत्त्व माना गया था। भरत ने अपने पात्रों के लिए देश और अवस्था के अनुरूप वेषविन्यास की व्यवस्था करते हुए औचित्य तत्त्व पर बल दिया है। यह अलङ्कार, रस, वृत्ति, गुण आदि के औचित्य के रूप में काव्य में शोभाधायक होता है।

3.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रस-सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है-
   (क) आचार्य भामह (ख) आचार्य दण्डी (ग) भरतमुनि (घ) आचार्य मम्मट
2. अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है-
   (क) आचार्य दण्डी (ख) आचार्य भामह (ग) भरतमुनि (घ) आचार्य मम्मट
3. आचार्य क्षेमेन्द्र किस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं-
   (क) रीति (ख) अलङ्कार (ग) औचित्य (घ) रस
4. ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य कौन हैं-
   (क) कुन्तक (ख) वामन (ग) आनन्दवर्धन (घ) मम्मट
5. रीति को काव्य की आत्मा के रूप में कौन स्वीकार करते हैं -
   (क) मम्मट (ख) वामन (ग) आनन्दवर्धन (घ) कुन्तक
6. वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य है –
   (क) भामह (ख) विश्वनाथ (ग) कुन्तक (घ) भरत
7. रस सूत्र के प्रथम व्याख्याकार कौन है-
   (क) भट्टलोल्लट (ख) भट्टशकुक (ग) अभिनवगुप्त (घ) भट्टनायक
8. आचार्य दण्डी किस सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते है-
   (क) रस (ख) अलकार (ग) औचित्य (घ) वक्रोक्ति
9. आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा किसे माना है-
   (क) रीति (ख) रस (ग) ध्वनि (घ) औचित्य
10. आनन्दवर्धन ने प्रतीयमान ध्वनि के कितने भेद माने है-
   (क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) सात

3.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. रीति सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. औचित्य सम्प्रदाय पर टिप्पणी कीजिए।
3. वक्रोक्ति सम्प्रदाय का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
4. रस-सम्प्रदाय की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
5. सौन्दर्यमलङ्कारः की समीक्षा कीजिए।

3.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
2. काव्यशास्त्र में अलङ्कार की क्या भूमिका है? विवेचना कीजिए।
3. काव्यशास्त्र में रस-सम्प्रदाय के महत्त्व को दर्शाइए।
4. काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायों में रीति सम्प्रदाय की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
5. काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायों में औचित्य सम्प्रदाय को रेखाङ्कित कीजिए।

इकाई 4 - ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

4.2.1 ध्वन्यालोक

4.2.2 तत्त्वालोक

4.2.3 अर्जुनचरित

4.2.4 देवीशतक

4.2.5 विषमबाणलीला

4.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

4.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

4.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के कर्तृत्व जैसे ध्वन्यालोक, तत्त्वालोक, देवीशतक, विषमबाणलीला आदि से परिचित होंगे।
- ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के काल सम्बन्धी विषयों का अवबोध होगा।

4.1 प्रस्तावना

ध्वन्यालोक आचार्य आनन्दवर्धन की महनीय कृति है। इस ग्रन्थ में ध्वनि के विविध स्वरूपों का विशद विवेचन किया गया है। काव्य का आत्मतत्त्व ध्वनि को माननेवाले आचार्य आनन्दवर्धन ने इस ग्रन्थ में काव्यात्मक सिद्धान्तों का भलीभाँति वर्णन किया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस पर लोचन टीका का प्रणयन किया है। उस टीका में सहृदय का लक्षण देते हुए आचार्य कहते हैं- येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदी-भूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः। अर्थात् जिनका काव्य के अनुशीलन का अभ्यास निरन्तर करने से विशाल हृदय हो गया है और ऐसे विशाल हृदय दर्पण में जो वर्णन करने योग्य तन्मयीभवनयोग्यता का विकास हो गया है, ऐसे अपने हृदय से सम्वाद स्थापित करने वाले सहृदय हैं। यह आचार्य ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम ध्वन्यालोक है। जिसमें चार उद्योत हैं। यह कश्मीर प्रदेश के निवासी थे। इन्हें कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा का समकालीन माना जाता है। कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा का समय 855 ई. से 884 ई. तक था। अतएव आनन्दवर्धन का समय भी नवम शताब्दी निश्चित रूप से माना जा सकता है। आनन्दवर्धनाचार्य द्वारा विरचित ध्वन्यालोक के दो टीकाकार हैं- १.चन्द्रिका २.अभिनवगुप्त। अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर लोचन नामक टीका लिखी है, इन्होंने कई स्थानों पर चन्द्रिकाकार की आलोचना की है तथा अपनी लोचन टीका के औचित्य को प्रतिपादित करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त लिखते हैं -

किं लोचनं विना लोको भाति चन्द्रिकयापि हि।

अतो अभिनवगुप्तोऽत्र लोचनोन्मीलनं व्यधात् ॥

आनन्दवर्धन की रचनाएँ –

आनन्दवर्धन की रचनाएँ एवं उनका सामान्य परिचय निम्नलिखित है-

4.2.1 ध्वन्यालोक-

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रणेता आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि सिद्धान्त को उद्भावना करते हुए ध्वन्यालोक नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। उन्होंने "काव्यस्यात्मा ध्वनिः" ऐसा काव्य का लक्षण किया है तथा अपने मत विषयक विभिन्न विरोधों एवं आलोचनाओं का समन भी किया है। अन्ततः ध्वनि ही काव्य की आत्मा है ; ऐसा सिद्धान्त मत प्रस्तुत किया है।

इस ध्वनि सिद्धान्त को प्रतिस्थापित करते हुए उन्होंने अपने ग्रन्थ को चार उद्योत में विभाजित किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने इस ग्रन्थ के **प्रथम उद्योत में** मङ्गलाचरण करते हुए भगवान् विष्णु की स्तुति की है तथा ध्वनिविषयक विप्रतिपत्तियों का निरूपण किया है। तत्पश्चात् ध्वनि के अभाववादी, भाक्तवादी, अनिर्वचनीयतावादी पक्षों को भी निरूपित करते हैं। ध्वनि का निरूपण, उसका सिद्धान्त तथा वाच्य एवं प्रतीयमान अर्थ की स्थापना तथा वाच्य से उसकी श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है।

द्वितीय उद्योत में ध्वनि काव्य के भेद एवं असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि के सन्दर्भ में रस प्रक्रिया, रस विवेचन तथा रस सिद्धान्त एवं रस सूत्र की व्याख्या तथा असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि के सम्पूर्ण भेदोपभेद का निरूपण प्राप्त होता है।

तृतीय उद्योत में ध्वनि के पद-प्रकाश्य एवं वाक्य-प्रकाश भेद के साथ-साथ वर्णों की रसद्योतकता सङ्घटना के व्यञ्जकत्व, रसबन्ध का औचित्य, रस विरोध एवं उनका परिहार तथा वृत्तियों की विवेचना की है। इसी प्रसङ्ग में उन्होंने शान्त रस को भी सबल शब्दों में मान्यता दी है। शान्त का स्थायीभाव शम अथवा निर्वेद है, जो सांसारिक विषयों का निषेध करता है। यह अपने आप में परम सुख है।

अन्त में, **चतुर्थ उद्योत में** प्रतिभा के आनन्त्य का वर्णन है। प्रतिभाशाली कवि ध्वनि के द्वारा प्राचीन भाव, अर्थ, उक्ति आदि को नूतन चमत्कार प्रदान करता है। इस प्रकार अनेक कार्यक्षेत्रों के रहते हुए भी कार्यक्षेत्र असीम है ; ऐसा वर्णन करते हैं। प्रतिभाशाली कवियों में भावसाम्य या उक्तिसाम्य का पाया जाना दोष नहीं है। यह साम्य तीन प्रकार का होता है-

१. बिम्बवत्

२. चित्रवत्,

३. देहवत्

इनमें बिम्ब और चित्रसाम्य स्पृहणीय नहीं है, परन्तु देहसाम्य कोई दोष नहीं है, वह प्रतिभा का ही उपकारक हुआ करता है। इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में ध्वनि के विविध पक्षों एवं सिद्धान्तों का समावेश इन चारों उद्योतों में किया है।

मूल विषय के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर अन्य दूसरे काव्य के सिद्धान्तों का विवेचन ध्वन्यालोककार ने किया है, यथा-गुण, संघटना एवम् अलङ्कार कारस के साथ सम्बन्ध। इस विषय में आचार्य विश्वेश्वर ध्वन्यालोक की भूमिका में लिखते हैं कि "ध्वनिकार ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में गुण एवं रस का सहज सम्बन्ध माना है- करुण और श्रृङ्गार का माधुर्य से सहज सम्बन्ध है और रौद्र का ओज से। पर सङ्घटना का रस के साथ अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है- साधारणत: माधुर्य के लिए असमासा और ओज के लिए मध्यसमासा या दीर्घसमासा सङ्घटना अधिक उपयुक्त होती है; परन्तु यह कोई अटल नियम नहीं है। इसके विपरीत स्थिति भी हो सकती है- मध्यम या दीर्घसमासा के सङ्घटना साथ भी माधुर्य गुण तथा श्रृङ्गार या करुण रस की स्थिति सम्भव है, और असमासा सङ्घटना द्वारा भी ओज गुण और रौद्र रस का परिपाक हो सकता है। यही बात अलङ्कारों के सम्बन्ध में भी है। अलङ्कारों को भी रस का सहकारी होना चाहिए- उनकी स्वतन्त्र स्थिति, जो रस में बाधक हो, श्लाध्य नहीं है। श्रृङ्गार और करुण जैसे कोमल रसों के लिये यमक आदि अनुकूल नहीं पड़ते, रूपक पर्यायोक्त आदि की उनके साथ सङ्गति अच्छी तरह से बैठ जाती है, आदि-आदि।"

4.2.2 तत्त्वालोक - आनन्दवर्धन के दार्शनिक ग्रन्थ के रूप में तत्त्वालोक का नाम आता है। इस ग्रन्थ का भी परिचय ध्वन्यालोक के वर्णन में ही

आया है। यह अद्वैतवादी सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थ प्रतीत होता है। जैसा कि इसके विषय में कहा गया है- "तदुतीर्णत्वे तु सर्वं परमेश्वराद्वयं ब्रह्मोत्यस्मच्छास्त्रकारेण न न विदितं तत्त्वालोकग्रन्थं विरचयेत्यास्ताम्। ध्वन्यालोक पृष्ठ संख्या ६७" एतच्च ग्रन्थकारेण तत्त्वालोके वितत्योक्तमिह त्वस्य न मुख्योऽवसर इति नास्माभिर्दर्शितम् (पृष्ठ संख्या ५३३)। आनन्दवर्धन की दार्शनिकता इस पद्य से भी प्रदर्शित होती है-

या व्यापारवती रसान् रसयितुं काचित्कवीनां नवा,

दृष्टिर्या परिनिष्ठितार्थविषयोन्मेषा न वैपश्चिती ।

ते द्वे अप्यवलम्ब्य विश्वमनिशं निर्वर्णयन्तो वयं

श्रान्ता नैव च लब्धमब्धिशयनं, त्वद्भक्तितुल्यं सुखम् ॥

आनन्दवर्धन ने ध्वनि की अनिर्वचनीयता (केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्) माननेवाले को उत्तर देते हुए भी कहा है कि– "यत्तु अनिर्देश्यत्वं सर्वलक्षणविषयं बौद्धानां प्रसिद्धं तत्तन्मतपरीक्षायां ग्रन्थान्तरे निरूपयिष्यामः" इसपर लोचनकार कहते हैं कि "ग्रन्थान्तर इति विनिश्चयटीकायां धर्मोत्तर्यां या वृत्तिरमुना ग्रन्थकृता कृता तत्रैव तद्व्याख्यातम्।" इससे निश्चित होता है कि आचार्य ने बौद्ध दार्शनिक आचार्य धर्मोत्तर की विनिश्चयटीका पर वृत्ति रूप से व्याख्यान प्रस्तुत किया था।

4.2.3 अर्जुनचरित – अर्जुनचरित आनन्दवर्धनाचार्य विरचित काव्यग्रन्थ है। इसका उल्लेख ध्वन्यालोक में प्राप्त होता है। देवीशतक के अन्तिम पद्य की व्याख्या में कैयट ने आनन्दवर्धन के अर्जुनचरित का निर्देश किया है।

4.2.4 देवीशतक – आनन्दवर्धनाचार्य विरचित देवीशतक एक काव्यग्रन्थ है। इसका भी उल्लेख ध्वन्यालोक में ही प्राप्त होता है। देवीशतक के अन्तिम पद्य में वर्णन है कि आनन्दवर्धनाचार्य नोण के पुत्र थे-

देव्या स्वप्नोद्गमादिष्टदेवीशतकसंज्ञया ।

देशितत्त्वचमामाधादतो नोणसुतो नुतिम् ॥

उन्होंने देवीशतक की रचना विषमबाणलीला एवं अर्जुनचरित के बाद ही की होगी, ऐसी सम्भावना है क्योंकि वें इस पद्य में लिखते हैं-

येनानन्दकथायां त्रिदशानन्दे च लालिता वाणी ।

तेन दुष्करमेतत् स्तोत्रं देव्याः कृतं भक्त्या ॥

काव्यानुशासनविवेक में हेमचन्द्र ने भी आनन्दवर्धन के देवीशतक का उद्धरण देते हुए उन्हें नोण का पुत्र माना है। विष्णुपद भट्टाचार्य के मतानुसार India office Library की पाण्डुलिपि के तृतीय उद्योत के अन्त की पुष्पिका में आनन्दवर्धन के पिता नोण अथवा नागेशोपाध्याय प्रमाणित होते हैं और चतुर्थ उद्योत की भूमिका में जोणोपाध्याय मिलता है।

4.2.5 विषमबाणलीला - विषमबाणलीला आनन्दवर्धनाचार्य विरचित काव्यग्रन्थ है। इसका वर्णन ध्वन्यालोक में प्राप्त होता है। देवीशतक के अन्तिम पद्य की व्याख्या में कैयट ने आनन्दवर्धन के बिषमबाणलीला का निर्देश किया है। विष्णुपद भट्टाचार्य के मत में सारसमुच्चय नामक ग्रन्थ में आनन्दवर्धन की विषमबाणलीला का उल्लेख है। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में कहा है - **इदं च प्रस्थानं कविव्युत्पत्तये विषमबाण-लीलायां सप्रपञ्चं दर्शितम् । चेतनानां च बाल्याद्यवस्थाभिरन्यत्वं सत्कवीनां प्रसिद्ध-मेव । चेतनानामवस्थाभेदेऽप्य-वान्तरावस्थाभेदान्नानात्वम् । यथा कुमारीणां कुसुमशर-भिन्नहृदयानामन्यासां च । तत्रापि विनीतानामविनीतानां च । अचेतनानां च भावानामा-रम्भाद्यवस्थाभेदभिन्नानामेकैकशः स्वरूपमुपनिबध्यमानमानन्त्यमेवोपयाति । यथा ---**

हंसानां निनदेषु यैः कवलितैरासज्यते कूजता-

मन्यः कोऽपि कषायकण्ठलुठनादाघर्घरो विभ्रमः ।

ते सम्प्रत्यकठोरवारणवधूदन्ताङ्कुरस्पर्धिनो

निर्याताः कमलाकरेषु बिसिनीकन्दाग्रिमग्रन्थयः ॥

एवमन्यत्रापि दिशानयानुसर्तव्यम् ।

देशभेदान्नानात्वमचेतनानां तावत् ॥

अर्थात् कवियों की व्युत्पत्ति के लिए 'विषमबाणलीला' में इस मार्ग को हमने विस्तारपूर्वक प्रदर्शित किया है। चेतनोंका बाल्य आदि अवस्थाभेद से भेद सत्कवियों में प्रसिद्ध ही है। चेतनों के अवस्था भेद के वर्णन में अवान्तर अवस्थाभेदसे भी भेद हो सकता है। जैसे काम के बाण से विद्ध हृदयवाली तथा अन्य स्वस्थ कुमारियों का अवान्तर अवस्थाभेद से भेद होता है। उनमें भी विनीत और उच्छल कन्याओं का अवान्तर अवस्था आदि के भेद से नानात्व हो जाता है। आरम्भ आदि अवस्था भेद से भिन्न अचेतन पदार्थों के स्वरूप का भी अलग-अलग वर्णन करने से अनन्तता को प्राप्त हो ही जाता है। जैसे-

जिनके खाने से कूजते हुए हंसों के निनादों में, मधुर कण्ठ के संयोग से, घर्घर ध्वनियुक्त कुछ नया अपूर्व ही विभ्रम उत्पन्न हो जाता है, करिणी के नये कोमल दन्ताङ्कुरों से स्पर्धा करनेवाली मृणाल की वे नवीन ग्रन्थियाँ इस समय तालाबों से बाहर निकल आयी हैं। यहाँ मृणाल की नवीन ग्रन्थियों के आरम्भ का वर्णन होने से अवस्था भेदमूलक चमत्कार प्रतीत होता है। इस प्रकार और जगह भी इस मार्ग का अनुसरण किया जाना चाहिये । देशभेद से प्रथमतः अचेतनों का भेद जैसे मलय आदि देश और दक्षिण दिशाओं विभिन्न दिशाओं और स्थानों में सञ्चरण करनेवाले पवनों का और अन्न, जल तथा पुष्प आदि का भी भेद प्रसिद्ध ही है। चेतनों में भी ग्राम, अरण्य, जल आदि में पले हुए मनुष्य, पशु, पक्षी प्रभृति में परस्पर भेद दिखलाई ही देता है। वह भी विचारपूर्वक ठीक ढंग से वर्णित होने पर उसी प्रकार अनन्त हो जाता है। जैसे नाना दिग्, देश आदि से निघ्न मनुष्यों के ही व्यवहार और व्यापार आदिमें जो नाना प्रकार के भेद पाये जाते हैं उन सबका पार कौन पा सकता है ? विशेषकर स्त्रियों के विषय में पार पाना असम्भव ही है। सुकवि लोग अपनी प्रतिभा के अनुसार उस सबका वर्णन करते ही हैं।

4.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ध्वनि सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं -

(क) अभिनवगुप्त (ख) आनन्दवर्धन (ग) मम्मट (घ) भामह

2. ध्वन्यालोक विभक्त है -

(क) उद्योतों में (ख) अध्यायों में (ग) उन्मेषों में (घ) उल्लासों में

3. ध्वन्यालोक पर 'लोचन' नामक टीका किसने लिखी है-

(क) कुन्तक (ख) महिमभट्ट (ग) अभिनवगुप्तपादाचार्य (घ) आनन्दवर्धन

4. ध्वन्यालोक की प्राचीनतम टीका है-

(क) लोचन (ख) चन्द्रिका (ग) कौमुदी (घ) सङ्केत

5. आनन्दवर्धन की कृति नहीं है-

(क) तत्त्वालोक (ख) देवी माहात्म्य (ग) विषमबाणलीला (घ) अर्जुनचरित

6. ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण में आनन्दवर्धन ने किस देवता का स्मरण किया है-

(क) ब्रह्मा का (ख) नरसिंह अवतार विष्णु का (ग) शिव का (घ) श्रीकृष्ण का

7. व्यङ्ग्य प्राधान्ये हि.....

(क) पद: (ख) रस: (ग) वर्ण: (घ) ध्वनि:

8. "स्वेच्छाकेसरिण:...नखा:" यह मङ्गलाचरण किस ग्रन्थ से लिया गया है-

(क) काव्यप्रकाश (ख) साहित्य दर्पण (ग) ध्वन्यालोक (घ) वक्रोक्तिजीवितम्

9. काव्यस्यात्मा स एवार्थ: में 'स' का तात्पर्य है –

(क) वाच्यार्थ (ख) लक्ष्यार्थ (ग) व्यङ्ग्यार्थ (घ) प्रतीयमानार्थ

10. ध्वन्यालोक में प्रतीयमान ध्वनि का भेद है-

(क) वस्तु (ख) अलङ्कार (ग) रस (घ) ये सभी

4.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1.आचार्य आनन्दवर्धन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. आचार्य आनन्दवर्धन के काल की चर्चा कीजिए।

3. आचार्य आनन्दवर्धन की रचनाओं के नाम बताईए।

4. आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

5. विषमबाणलीला का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

4.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य आनन्दवर्धन के कृतित्व की समीक्षा कीजिए।
2. आचार्य आनन्दवर्धन के कालविषयक मतों पर प्रकाश डालिए।
3. आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
4. ध्वन्यालोक का विवेचन कीजिए।
5. आचार्य आनन्दवर्धन के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 5 – ध्वनि सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 ध्वनि सिद्धान्त

5.2.1 स्फोट सिद्धान्त

5.2.2 ध्वनि का अर्थ

5.2.3 ध्वनि के विविध विकल्प

5.2.4 ध्वनि का स्वरूप

5.2.5 ध्वनि के भेद

5.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

5.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- ध्वनि-सिद्धान्त का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्फोट सिद्धान्त का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वनि के अर्थ का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वनि के विविध विकल्प का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ध्वनि के स्वरूप का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वनि के भेदों की पहचान कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

ध्वन्यालोक आचार्य आनन्दवर्धन की महनीय कृति है। हाँलाकि ध्वनि काव्य की आत्मा है ; ऐसा पूर्ववर्ती विद्वानों ने कहा है और यह उद्घोषणा आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण में ही करते हुए कहते हैं- काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति यैः बुधैर्समाम्नात्पूर्वम् तथापि ध्वनि के विषय में अनेक मतभेद और उनका निराकरण करने के लिए आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करने के लिए इस महनीय कार्य को करते हैं। इसमें ध्वनि का स्वरूप, स्फोट का स्वरूप, ध्वनि का अर्थ, ध्वनि के विविध विकल्प एवं ध्वनि के भेद का वर्णन करते हैं।

5.2 ध्वनि सिद्धान्त

ध्वनि शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वैयाकरणों ने किया। आनन्दवर्धन के अनुसार प्रथम अथवा सर्व प्रमुख विद्वान् वैयाकरण हैं क्योंकि

व्याकरण ही सभी विद्याओं का मूल है- "प्रथमे हि विद्वान्सो वैयाकरणा: व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्।" वैयाकरण सुनाई देने वाले वर्णों के लिए ध्वनि शब्द का व्यवहार करते हैं- "ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति।"

5.2.1 स्फोट सिद्धान्त -

ध्वनिकार को स्फोट सिद्धान्त वैयाकरणों के स्फोट सिद्धान्त की प्रेरणा से प्राप्त हुआ है। उन्होंने स्फोट स्वीकार किया है कि 'सूरिभिः कथितः 'में सूरिभिः विद्वानों द्वारा से अभिप्राय वैयाकरणों से है क्योंकि वैयाकरण ही पहले विद्वान् हैं और व्याकरण ही सब विद्याओं का मूल है। वे श्रूयमाण अर्थात् सुने हुए वर्णों में ध्वनि का व्यवहार करते हैं। लोचनकार ने इस प्रसङ्ग को और अधिक स्पष्ट किया है। उन्होंने वैयाकरणों के स्फोट सिद्धान्त के साथ आलङ्कारिकों के इस ध्वनि सिद्धान्त का पूर्णतः सामञ्जस्य स्थापित करते हुए तद्विषयक पृष्ठाधार की साङ्गोपाङ्ग व्याख्या की है। ध्वनि के पाँच रूप व्यञ्जक शब्द, व्यञ्जक अर्थ, व्यङ्ग्य अर्थ, व्यञ्जना- व्यापार तथा व्यङ्ग्य काव्य सभी के लिए व्याकरण में निश्चित एवं स्पष्ट सङ्केत हैं। भर्तृहरि ने भी कहा है-

"यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते।

स स्फोटः शब्दजः शब्दो ध्वनिरित्युच्यते बुधैः ।।"

करणों (vocal organs) के संयोग और वियोग (अर्थात् उनके खुलने और बन्द होने से ही आवाज पैदा होती है) से जो स्फोट उपजनित होता है। यह शब्दज तत्त्व विद्वानों द्वारा ध्वनि कहलाता है। वक्ता के मुख से उच्चरित शब्दों से उत्पन्न शब्द हमारे मस्तिष्क में नित्य वर्तमान स्फोट को जगा देते हैं। यही वैयाकरणों की ध्वनि है। इसी प्रकार आलङ्कारिकों के अनुसार भी घण्टानाद के समान अनुरणनरूप, शब्द से उत्पन्न, व्यङ्ग्य अर्थ ध्वनि है। वैयाकरणों के अनुसार 'गौः' शब्दका उच्चारण होने पर हम 'ग्, औ और : विसर्ग इनकी पृथक् पृथक् प्रतीति करते हैं। इनकी एक साथ तो स्थिति हो नहीं सकती। यदि ऐसा हो तो पौर्वापर्य का अवकाश ही नहीं रहेगा। तीन भिन्न शब्द एक साथ हो ही नहीं सकते। 'गौः' शब्दके सुनने पर हमारे मस्तिष्क में नित्य वर्तमान स्फोटरूप 'गौः 'की प्रतीति होती है। किन्तु इसके पहले ही केवल 'ग्' शब्द को सुनते ही इस प्रतीति के साथ स्फोटरूप 'गौः' की अस्पष्ट प्रतीति भी होती है जो 'औ' और '' विसर्ग तक आ जाने पर पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

इसको आचार्य मम्मट की व्याख्या के आधार पर और अधिक स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए गौः शब्दमें 'ग्', 'औ', और ":" ये तीन वर्ण हैं। इन तीन वर्णों गौः का अर्थबोध किसके द्वारा होता है? यदि यह कहें कि प्रत्येक के उच्चारण द्वारा तो एक वर्ण ही पर्याप्त होगा, शेष दो व्यर्थ हैं और यदि यह कहें कि तीनों वर्ण समुदाय के उच्चारण द्वारा तो यह असम्भाव्य है, क्योंकि कोई भी वर्णध्वनि दो क्षण से अधिक नहीं ठहर सकती अर्थात् विसर्ग तक आते-आते 'गं' की ध्वनि का लोप हो जायेगा, जिसके कारण तीनों वर्णों के समुदाय की ध्वनि का एक साथ होना सम्भव न हो सकेगा। अतएव अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन के बाद वैयाकरणों ने स्थिर किया कि अर्थबोध शब्द के 'स्फोट' द्वारा होता है अर्थात् पूर्व-पूर्व वर्णों के संस्कार अन्तिम अन्तिम वर्ण के उच्चारण के साथ संयुक्त होकर शब्द का अर्थबोध कराते हैं। भर्तृहरि भी यही कहते हैं-

'प्रत्ययैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुग्रहैस्तथा।

ध्वनिप्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते।।

ग्रहण के लिए अनुगुण अनुकूल, अनुपाख्येय जिन्हें स्पष्ट शब्द में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, प्रत्ययों (c-guitijos) द्वारा ध्वनिरूप में प्रकाशित शब्द स्फोट में स्पष्ट हो जाता है। यहाँ वैयाकरणों के अनुसार, नाद कहलानेवाले, अन्त्यबुद्धि से ग्राह्य स्फोटव्यञ्जक वर्ण ध्वनि कहलाते हैं। इसके अनुसार व्यञ्जक शब्द और अर्थ भी ध्वनि कहलाते है, यह आलङ्कारिकों का मत है।

हम एक श्लोक को कई प्रकार से पढ़ सकते हैं। कभी धीरे-धीरे, कभी बहुत शीघ्र, कभी मध्यलय, कभी गाते हुए तथा कभी सीधे-सीधे। किन्तु सभी समय में यद्यपि इन भिन्न-भिन्न ध्वनियों का प्रयोग करते हैं, अर्थ केवल एक ही प्रतीत होता है। ऐसा क्यों? वैयाकरणों का कहना है कि शब्द दो प्रकार का होता है। एक तो स्फोटरूप में वर्तमान प्राकृत शब्द, दूसरा विकृत रूप में शब्द। हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे उस स्फोटरूप की अनुकृतिमात्र है। प्राकृत शब्द का एक नित्यस्वरूप होता है, उसकी अनुकृतियों में विभिन्नता हो सकती है। विकृत शब्दों का उच्चारणरूप यह विभिन्न व्यापार भी वैयाकरणों के अनुसार ध्वनि है। आलङ्कारिकों के अनुसार भी प्रसिद्ध शब्द व्यापारों से भित्र व्यञ्जकत्व नामक शब्दव्यवहार ध्वनि है। इस प्रकार व्यङ्ग्य अर्थ, व्यञ्जक शब्द, व्यञ्जक अर्थ और व्यञ्जकत्वव्यापार यह चार तरह की ध्वनि हुई। इन चारों के एक साथ रहने पर समुदाय रूप काव्य भी ध्वनि है। इस प्रकार लोचनकार ने वैयाकरणों का अनुसरण करके पाँचों में धवनित्व सिद्ध कर दिया। इस विवेचन का सारांश यह है-

१. जिसके द्वारा अर्थ का प्रस्फुटन हो उसे स्फोट कहते हैं।

२. शब्द के दो रूप होते हैं- एक व्यक्त अर्थात् विकृत रूप; दूसरा अव्यक्त अर्थात् प्राकृत नित्य रूप। व्यक्त सम्बन्ध बैखरी से और अव्यक्त का सम्बन्ध मध्यमा वाणी से है जो बैखरी की अपेक्षा सूक्ष्मतर है। पहला स्थूल ऐन्द्रिय रूप है, यह उच्चारण विधि के अनुसार बदलता रहता है। दूसरा सूक्ष्म मानस रूप है जो नित्य तथा अखण्ड है। यह हमारे मन में सदैव वर्तमान रहता है और शब्द अर्थात् वर्णो के सङ्घातविशेष को सुनकर उद्भूत हो जाता है। इसको शब्द का स्फोट कहते हैं। स्फोट का दूसरा नाम 'ध्वनि' भी है।

३. जिस प्रकार पृथक्-पृथक् सुनकर भी शब्द का बोध नहीं होता है, यह केवल स्फोट या ध्वनि द्वारा ही होता है, इसी तरह शब्दों का वाच्यार्थ ग्रहणकर भी काव्य के सौन्दर्य की प्रतीति नहीं होती, वह केवल व्यङ्ग्यार्थ या ध्वनि के द्वारा ही होती है।

४. व्याकरण में व्यञ्जक शब्द, व्यञ्जक अर्थ, व्यङ्ग्य अर्थ, व्यञ्जना व्यापार तथा व्यङ्ग्य काव्य- ध्वनि के इन पाँचों रूपों के लिए निश्चित सङ्केत मिलते हैं। यह स्फोट शब्द, वाक्य और प्रबन्ध-तक का होता है।

इस प्रकार शब्दसाम्य और व्यापारसाम्य के, आधार पर ध्वनिकार ने व्याकरण के ध्वनि-सिद्धान्त से प्रेरणा प्राप्त कर अपने ध्वनि उद्भावना की।

5.2.2 ध्वनि का अर्थ

ध्वनि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ध्वनिकार कहते हैं-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ ध्वन्यालोक 1/3

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके उस अर्थ को प्रकाशित करता है, उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है। आचार्य आनन्दवर्धन उपर्युक्त कारिका की व्याख्या करते हैं-

"यत्रार्थो वाच्यविशेषो वाचकविशेषः शब्दो वा, तमर्थं व्यङ्क्तः स काव्यविशेषो ध्वनिरिति" अर्थात् जहाँ विशेष वाचकरूप शब्द उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं, वह काव्यविशेष ही ध्वनि कहलाता है। ध्वनिकार ने तमर्थम् अर्थात् उस अर्थ का निरूपण करते हुए कहा है कि ध्वनि का उस अर्थ से तात्पर्य है, उस प्रतीयमान स्वादु (चवर्णीय) अर्थ का जो प्रतिभाजन्य है और जो महाकवियों की वाणी में वाच्याश्रित अलङ्कार आदि से भिन्न, स्त्रियों में अवयवों से अतिरिक्त लावण्य की भाँति कुछ और ही वस्तु है। इसलिए यह विशिष्ट अर्थ प्रतिभाजन्य है, स्वादु (सरस) है, वाच्य से अतिरिक्त कुछ दुसरी ही वस्तु है और प्रतीयमान है-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तम् विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥ ध्वन्यालोक 1/4

उस स्वादु अर्थवस्तु को बिखेरती हुई बड़े-बड़े कवियों की सरस्वती अलौकिक तथा अति भासमान प्रतिभा विशेष को प्रकट करती है-

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमानां महतां कवीनाम् ।

अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम् ॥ ध्वन्यालोक 1/5

आचार्य अभिनवगुप्त ने भी ध्वनि के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि-

सर्वत्र शब्दार्थयोरुभयोरपि ध्वननव्यापार स काव्यविशेष इति।

अर्थो वा शब्दो वा शब्दार्थयोर्ध्वनननमिति।

कारिकया तु प्राधान्येन समुदाय एव वाच्यरूप मुखतया ध्वनिरिति प्रतिपादनम्।

अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों का ही ध्वनन व्यापार होता है। यह काव्यविशेष का अर्थ है, अर्थ या शब्द या व्यापार। वाच्य अर्थ भी ध्वनि करता है और शब्द भी, इसी प्रकार व्यञ्जक (अर्थ) भी ध्वनित होता है। अथवा शब्द अर्थ का व्यापार भी ध्वनन है। इस प्रकार कारिका के

माध्यम से प्रधानतया समुदाय शब्द, अर्थ- वाच्य (व्यञ्जक) अर्थ और व्यङ्ग्य अर्थ तथा शब्द और अर्थ का व्यापार ही ध्वनि है। ध्वनि शब्द की पाँच व्युत्पत्तियाँ कहीं गई है। अर्थों से भी ये पाँचों भेद प्रतिपादित होते हैं-

1. ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यञ्जकः शब्दः ध्वनिः- जो ध्वनित करे या कराये वह व्यञ्जक शब्द ध्वनि है।
2. ध्वनति ध्वनयति वा यः सः व्यञ्जकोऽर्थः ध्वनि- जो ध्वनित करे या कराये वह व्यञ्जक अर्थ ध्वनि है।
3. ध्वन्यते इति ध्वनिः - जो ध्वनित किया जाये वह ध्वनि है। इसमें रस, अलङ्कार और वस्तु, व्यङ्ग्य अर्थ के तीनों रूप आते हैं।
4. ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः- जिसके द्वारा ध्वनित किया जाये वह ध्वनि है। इसमें शब्द अर्थ के व्यापार-व्यञ्जना आदि शक्तियों का बोध होता है।
5. ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः - जिसमें वस्तु, अलङ्कार, रसादि ध्वनित हो उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।

इस प्रकार ध्वनि का प्रयोग पाँच भिन्न-भिन्न परन्तु परस्पर सम्बद्ध अर्थों में होता है-

1. व्यञ्जक शब्द
2. व्यञ्जक अर्थ
3. व्यङ्ग्य अर्थ
4. व्यञ्जना व्यापार
5. व्यङ्ग्य प्रधान काव्य

साररूप में ध्वनि का अर्थ है - व्यङ्ग्य, परन्तु पारिभाषिक दृष्टि से वह व्यङ्ग्य वाच्यातिशयी हो। अर्थात् ध्वनि से तात्पर्य है - वाच्य से अधिक रमणीय व्यङ्ग्य को ध्वनि कहते हैं।

5.2.3 ध्वनि के विविध विकल्प-

ध्वनिकार विरोधियों के मत के प्रस्तुतीकरण में तीन प्रकार के विकल्पों को उद्धृत करते हैं। जिनमें अभाववादी, भाक्तवादी तथा अनिर्वचनीयतावादी हैं।

1. **अभाववादी-** अभाववादियों में अलङ्कार शास्त्र के आचार्यों का नाम आता है। वें कहते हैं कि ध्वनि को आप काव्य की आत्मा (सौन्दर्य) मानते हैं। पर काव्य शब्द और अर्थ का सम्बद्ध शरीर हैं। स्वयं शब्द और अर्थ तो ध्वनि हो नहीं सकते। यदि उनके सौन्दर्य अथवा चारुत्व को आप ध्वनि मानते हैं तो वह पुनरावृत्तिमात्र है क्योंकि शब्द और अर्थ के चारुत्व के तो सभी प्रकारों का विवेचन किया जा चुका है। अभाववादियों में भी तीन कोटियाँ है-

   (क) काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ का चारुत्व दो प्रकार से सम्भव है, एक स्वरूपगत और दूसरा संगठनागत। शब्द का स्वरूपगत चारुत्व अनुप्रासादि अलङ्कारों द्वारा सम्भव है और अर्थ का स्वरूपगत चारुत्व उपमादि अलङ्कारों के रूप में प्रसिद्ध है। संघटनागत चारुत्व में वर्णसंघटना के धर्म, माधुर्यादि गुणों के रूप में प्रकट होता है। गुणों से अतिरिक्त उपनागरिका आदि वृत्तियाँ तथा वैदर्भी आदि रीतियाँ ही प्रसिद्ध हैं। अतः इन सबसे भिन्न ध्वनि नाम का कौन सा नया तत्त्व है ?

   (ख) कुछ अभाववादी कहते हैं कि ध्वनि तो है ही नहीं- नास्त्येव ध्वनि। परम्परागत मार्ग का अतिक्रमण करने वाले किसी नवीन चारुत्व को स्वीकार करने में काव्यत्व की हानि होगी।

   (ग) अभाववादियों में तीसरे कहते हैं कि ध्वनि नाम का कोई अपूर्व पदार्थ सम्भव ही नहीं है – "न सम्भवत्येव ध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित्"।

2. भाक्तवादी- भाक्तवाद में प्रयुक्त भक्ति शब्द का अर्थ भाक्त अर्थात् लक्षणा से है। भाक्तवादियों के अनुसार ध्वनि पदार्थ का लक्षणा में ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिए।

3. अनिर्वचनीयतावादी- कुछ प्रगल्भमति वाले ऐसे हैं, जो ध्वनि को स्वीकार करते हुए भी उसे अलक्षणीय, अनिर्वचनीय अथवा वाणी से परे केवल सहृदय संवेद्य ही मानते हैं। इस प्रकार काव्य के सभी भेदों में जो व्यङ्ग्यार्थ की स्फुट प्रतीति होती है, वही ध्वनि का पूर्ण लक्षण है-

सर्वेष्वेव प्रभेदेषु स्फुटत्वेनावभासनम्।

यत् व्यङ्ग्यस्याङ्गिभूतस्य तत्पूर्णं ध्वनिर्लक्षणम् ॥

5.2.4 ध्वनि का स्वरूप

आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि की स्थापना के पूर्व विभिन्न सम्प्रदायों के विरोध को स्थापित करते हुए अर्थात् विकल्पों की चर्चा करते हुए ध्वनि के स्वरूप को उद्घाटित करते हैं -

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।

केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्

तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम् ॥ ध्वन्यालोक 1/1

अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है और ऐसा पूर्ववर्ती आचार्यों ने कहा है। कुछ लोग ध्वनि को अभाव कहते हैं और कुछ विद्वान् उसे लक्षणा के अन्तर्गत मानते हैं। कुछ आचार्य उसको वाणी के द्वारा अगोचर मानते हैं अतः उसका स्वरूप उद्घाटित करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए उसके स्वरूप को कहना अत्यन्त आवश्यक है। ध्वनि केवल काव्य के तत्त्वज्ञों द्वारा ही जानने योग्य है।

काव्यस्त्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥ ध्वन्यालोक 1/5

अर्थात् काव्य की आत्मा का वही अर्थ है जैसा कि प्राचीनकाल में बहेलिये के द्वारा आहत क्रौञ्च पक्षी युगल के वियोग से उत्पन्न शोक आदिकवि का श्लोक बन गया।

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम् ।

अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्॥ ध्वन्यालोक 1/6

अर्थात् जिस आस्वादमय अर्थात् रसरूप अर्थतत्त्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी उनके अलौकिक, प्रतीत होने वाले अपूर्ववस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करती है।

5.2.5 ध्वनि-भेद

ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक ने ध्वनि के दो प्रमुख भेद माने हैं-

1. अविवक्षितवाच्य अथवा लक्षणामूला ध्वनि
2. विवक्षितान्यपरवाच्य अथवा अभिधामूला ध्वनि

इनके स्वरूप का विवेचन क्रमशः है -

1. अविवक्षितवाच्य ध्वनि-

इसे अविवक्षित वाच्य इसलिए कहते हैं कि वाच्यार्थ विवक्षित नहीं रहता अथवा यों कहें कि वाच्यार्थ बाधित होता है और उसके द्वारा तात्पर्य की सिद्धि नहीं होती। अतः स्पष्ट रूप से यह ध्वनि लक्षण के आश्रित रहती है, इसीलिए इसे लक्षणामूला ध्वनि कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं -

क- अर्थान्तर सङ्क्रमित वाच्य ध्वनि

ख- अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि

(क) अर्थान्तर सङ्क्रमित वाच्य ध्वनि–

अर्थान्तर सङ्क्रमित वाच्य उसे कहते हैं, जहाँ वाच्यार्थ स्वयं बाधित होकर अन्य अर्थ में परिणत हो जाये। उदाहरण-

तदा जायन्ते गुणा यदा ते सहृदयैर्गृह्यन्ते।

रविकिरणानुगृहीतानि भवन्ति कमलानि कमलानि।।

अर्थात् गुण तब होते हैं, जब वे सहृदयों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। सूर्यरश्मिमयी द्वारा अनुगृहीत कमल कमल ही होते हैं। यहाँ पर दूसरा कमल शब्द सामान्य कमल के अर्थ का बोध न कराता हुआ लक्ष्मीकान्त्वादि गुणविशिष्ट होने से अर्थान्तरसङ्क्रमित है और चारुत्वातिशय रूप व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति कराता है।

(ख) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि –

अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि उसे कहते हैं, जहाँ वाच्यार्थ हेय अथवा त्याज्य होता है।

उदाहरण -

रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः ।

निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥

अर्थात् जिसकी शोभा सूर्य से सङ्क्रान्त है, ऐसा तुषाराच्छादित चन्द्रमा निःश्वास से मलिन दर्पण की भाँति प्रकाशित नहीं हो पा रहा है। यहाँ अन्ध शब्द अपने नेत्रहीनता अर्थ को छोड़कर लक्षणा द्वारा अप्रकाश अर्थ का बोध कराता हुआ व्यञ्जना द्वारा अप्रकाशितजन्य अर्थ की अभिव्यक्ति कराता है।

2. विवक्षितान्यपरवाच्य अथवा अभिधामूला ध्वनि-

इसमें वाच्यार्थ विवक्षित होते हुए भी अन्यपरक अथवा व्यङ्ग्यपरक होता है। यह ध्वनि अभिधा पर आश्रित है। इसके भी दो भेद हैं-

(क) असङ्लक्ष्यक्रम

(ख) सङ्लक्ष्यक्रम

(क) असङ्लक्ष्यक्रम ध्वनि – असङ्लक्ष्यक्रम ध्वनि से तात्पर्य उस ध्वनि से है। जहाँ पर वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति क्रम से होते हुए भी वह नगण्य रहता है कि स्पष्ट रूप में प्रतिभासित नहीं होता है।

(ख) सङ्लक्ष्यक्रम ध्वनि – सङ्लक्ष्यक्रम ध्वनि में वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ का क्रम स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वस्तु ध्वनि, अलङ्कार ध्वनि इसी के अन्तर्गत आते हैं। स्थूल रूप में ध्वनि के यही मुख्य भेद हैं। अवान्तर भेदों का उल्लेख करते हुए लोचनकार अभिनवगुप्त ने लोचन टीका में ध्वनि के 35 भेद बताए हैं।

5.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. योऽर्थ: सहृदयश्लाघ्य: काव्यात्मेति व्यवस्थित: में 'य:' से क्या तात्पर्य है -

   (क) वाच्यार्थ (ख) लक्ष्यार्थ (ग) व्यङ्ग्यार्थ (घ) प्रतीयमानार्थ

2. निम्नलिखित में से ध्वन्यालोक के टीकाकार कौन हैं -

   (क) मम्मट (ख) अभिनवगुप्त (ग) क्षेमेन्द्र (घ) वामन

3. स्फोट-सिद्धान्त की अभिप्रेरणा किनसे प्राप्त हुई -

   (क) मीमांसकों से (ख) नैयायिकों से (ग) वैयाकरणों से (घ) अद्वैतवेदान्तियों से

4. ध्वन्यालोककार ने अभाववाद के कितने विकल्प माने हैं-

(क) चार (ख) तीन (ग) दो (घ) पाँच

5. काव्य का चारुत्व कितने प्रकार से सम्भव हैं-

(क) चार (ख) तीन (ग) दो (घ) पाँच

6. भाक्तवाद में प्रयुक्त भक्ति से क्या तात्पर्य है-

(क) अभिधा (ख) लक्षणा (ग) व्यञ्जना (घ) तात्पर्या

7. लक्षणामूलाध्वनि के कितने भेद हैं-

(क) चार (ख) तीन (ग) दो (घ) पाँच

8. लोचनकार अभिनवगुप्त ने ध्वनि के कितने भेद माने हैं-

(क) चार (ख) तीन (ग) दो (घ) पाँच

9. आनन्दवर्धन ने प्रमुख रूप से ध्वनि के कितने भेद माने हैं-

(क) चार (ख) तीन (ग) दो (घ) पाँच

10. आनन्दवर्धन ने अभाववादी के रूप में किस सम्प्रदाय के आचार्यों को माना है-

(क) अलङ्कारवादी (ख) रसवादी (ग) रीतिवादी (घ) औचित्यवादी

5.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. स्फोट सिद्धान्त का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. ध्वनि सिद्धान्त पर टिप्पणी लिखिए।
4. ध्वनि के भेदों पर प्रकाश डालिए।
5. वाच्य एवं प्रतीयमान ध्वनि के अर्थ का निरूपण कीजिए।

5.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. ध्वनि के विविध विकल्पों की समीक्षा कीजिए।
2. ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसके सिद्धान्त पक्ष को व्याख्यायित कीजिए।
3. ध्वनि के भेदोपभेद की विस्तृत परिचर्चा कीजिए।
4. स्फोट-सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. लक्षणामूला ध्वनि पर प्रकाश डालिए।

खण्ड – ख

इकाई – 6 कारिका 01 से 12 तक की व्याख्या (प्रथम उद्योत)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कारिका व्याख्या

6.2.1 मङ्गलाचरण की व्याख्या

6.2.2 कारिका 01 की व्याख्या

6.2.3 कारिका 02 की व्याख्या

6.2.4 कारिका 03 की व्याख्या

6.2.5 कारिका 04 की व्याख्या

6.2.6 कारिका 05 की व्याख्या

6.2.7 कारिका 06 की व्याख्या

6.2.8 कारिका 07 की व्याख्या

6.2.9 कारिका 08 की व्याख्या

6.2.10 कारिका 09 की व्याख्या

6.2.11 कारिका 10 की व्याख्या

6.2.12 कारिका 11 की व्याख्या

6.2.13 कारिका 12 की व्याख्या

6.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

6.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण की व्याख्या का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की 01 से लेकर 12 कारिकाओं तक की व्याख्या का अभिज्ञान कर सकेंगे।
- कारिका 1 से 12 तक के मध्य के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की पहचान कर सकेंगे।
- ध्वनि के लक्षण, भेद आदि का अवबोध कर सकेंगे।

- ध्वनि के सम्बन्ध में विविध मतों की समीक्षा कर सकेंगे।
- काव्यों में ध्वनित्व की पहचान कर सकेंगे।
- स्वकाव्य रचना में ध्वनि तत्त्व का निर्माण करने में समर्थ होंगे।

6.1 प्रस्तावना

ध्वन्यालोक की इस इकाई में ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण की व्याख्या की जाएगी। साथ ही कारिका 01 से लेकर कारिका 12 तक की व्याख्या भी की जाएगी। स्थान-स्थान पर वर्णन क्रम में ध्वन्यालोक की वृत्ति की भी व्याख्या की जाएगी और यथास्थान अभिनवगुप्तविरचित लोचन टीका का भी वर्णन किया जाएगा।

6.2 कारिका व्याख्या

6.2.1 मङ्गलाचरण की व्याख्या -

स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छस्वच्छायासितेन्दवः।

त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छिदो नखाः ॥ ॥

(स्वेच्छाकेसरिणः) अपनी इच्छा (मात्र) से ही सिंह (नरसिंह) स्वरूप को धारण करनेवाले (मधुरिपोः स्वच्छस्वच्छायायासितेन्दवः) मधु नामक दैत्य के शत्रु अर्थात् विष्णु की स्वच्छ कान्ति से चन्द्रमा को भी धूमिल करनेवाले (प्रपन्नार्तिच्छिदः नखाः) शरणागतों के दुःखों को काट देनेवाले नख (नाखून) तुम सबकी रक्षा करें।

अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विना कारणकलां

जगद्ग्रावप्रख्यं निजरसभरात्सारयति च ।

क्रमात्प्रख्योपाख्याप्रसरसुभगं भासयति तत्

सरस्वस्त्यास्तत्त्वं कविसहृदयाख्यं विजयते॥ लोचन ॥

जो कारण सामग्री के बिना ही वस्तु को उत्पन्न करता है अर्थात् प्रसरित कर देता है और पत्थर के समान इस नीरस जगत् को अपने रसरूपी प्रतिभा से युक्त कर देता है तथा कवि की प्रतिभा और क्रम से प्रकटित उपाख्या एवं आख्या से हृदय गोचर होता हुआ वस्तु जगत् को आभासित करता है। वह कवि और सहृदय द्वारा आख्यात सरस्वती का तत्त्व निश्चित रूप से विजयी है, अर्थात् सबसे बढ़कर है। (परमेश्वर के नमस्कार से धन्य होकर व्याख्याता और श्रोताओं के बिना किसी विघ्न की अभीष्ट व्याख्या के श्रवण रूप फल संपत्ति के लिए समुचित आशीर्वाद की प्राप्ति द्वारा उसका तत्त्व का प्रकटन करते हैं और कहते हैं कि वह तीनों मतों को सद्बुद्धि प्रदान करें।)

6.2.2 कारिका 01 की व्याख्या-

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।

केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्

तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम् ॥ 1 ॥

काव्य के तत्त्वज्ञ अर्थात् विद्वान् लोगों ने काव्य की आत्मा ध्वनि को माना है। उसे अन्य लोग ध्वनि का अभाव कहते हैं। कुछ आचार्यों ने उसे भाक्त कहा है। कुछ लोगों ने उस तत्त्व को वाणी द्वारा अगोचर कहा है। अतः सहृदयजनों के मन की प्रसन्नता के लिए उस ध्वनि के स्वरूप को हम कहते हैं।

बुधैः काव्यतत्त्वविद्भिः, काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति संज्ञितः, परम्परया यः समाम्नातपूर्वः सम्यक् आसमन्ताद्म्नातः प्रकटितः, तस्य सहृदयजन्मनः प्रकाशमानस्याप्यभावमन्ये जगदुः। तदभाववादिनां चामी विकल्पाः सम्भवन्ति।

काव्यमर्मज्ञों ने काव्य के आधारभूत जिस तत्त्व को ध्वनि यह नाम दिया है, परम्परा से जिसको प्रकाशित किया है, सहृदयों के चित्त में प्रकाशित उस चमत्कारजनक ध्वनि तत्त्व का कुछ लोग अभाव मानते हैं। उन अभाववादियों के निम्नलिखित विकल्प हैं -

तत्र केचिदाचक्षीरन् शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम्। तत्र शब्दगताश्चारूत्वहेतवोऽनुप्रासादयः प्रसिद्धा एव। अर्थगताश्चोपमादयः। वर्णसङ्घटनाधर्माश्च ये माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते।। तदनतिरिक्तवृत्तयो वृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः ता अपि गताः श्रवणगोचरम्। रीतयश्च वैदर्भीप्रभृतयः। तद्व्यतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिर्नामेति?

वहाँ कुछ लोग कहते हैं कि शब्दार्थ शरीरात्मक ही काव्य है। अभाववादियों में अलङ्कारशास्त्र के आचार्यों का नाम आता है। वे कहते हैं कि ध्वनि को आप काव्य की आत्मा (सौन्दर्य) मानते हैं-पर काव्य शब्द और अर्थ का सम्बद्ध शरीर है। स्वयं शब्द और अर्थ तो ध्वनि हो नहीं सकते। यदि उनके सौन्दर्य अथवा चारुत्व को आप ध्वनि मानते हैं तो वह पुनरावृत्तिमात्र है, क्योंकि शब्द और अर्थ के चारुत्व के तो सभी प्रकारों का विवेचन किया जा चुका है। काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ का चारुत्व दो प्रकार से सम्भव है। एक स्वरूपगत और दूसरा संगठनागत। शब्द का स्वरूपगत चारुत्व अनुप्रासादि अलङकारों द्वारा सम्भव है और अर्थ का स्वरूपगत चारुत्व उपमादि अलङ्कारों के रूप में प्रसिद्ध है। संघटनागत चारुत्व में वर्णसंघटना के धर्म माधुर्यादि गुणों के रूप में प्रकट होता है। गुणों से अतिरिक्त उपनागरिका आदि वृत्तियां तथा वैदर्भी आदि रीतियाँ ही प्रसिद्ध हैं। अतः इन सबसे भिन्न ध्वनि नाम का कौन सा नया तत्त्व है।

अन्ये ब्रूयुः नास्त्येव ध्वनिः, प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकिणः काव्यप्रकारस्य काव्यत्वहानेः। सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्। न चोक्तप्रस्थानातिरेकिणो मार्गस्य तत् सम्भवति। न च तत्समयान्तःपातिनः सहृदयान् कांश्चित् परिकल्प्य तत्प्रसिद्ध्या ध्वनौ काव्यव्यपदेशः प्रवर्तितोऽपि सकलविद्वन्मनोग्राहितामवलम्बते।

कुछ अभाववादी कहते हैं कि ध्वनि है ही नहीं-"नास्त्येव ध्वनि:"। परम्परागत मार्ग का अतिक्रमण करने वाले किसी नवीन चारुत्व को स्वीकार करने में काव्यत्व की हानि होगी। सहृदय के हृदय को आह्लाद प्रदान करने वाला शब्दार्थमयत्व ही काव्य का लक्षण है और जो कहा गया है कि उक्त प्रस्थान के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग सम्भव ही नहीं है। यह भी नहीं है की सहृदय की प्रसन्नता के लिए समयानुकूल कुछ भी कल्पना करके उस प्रसिद्ध प्रस्थान से व्यक्तिरिक्त काव्य का व्यपदेश कर लिया जाय और प्रवर्तित जो मार्ग है उसके अतिरिक्त इसका ग्रहण कर लिया जाय; ऐसा करने से सभी विद्वानों का मन इस ध्वनि नामक तत्त्व का अवलम्बन नहीं करेगा।

पुनरपरे तस्याभावमन्यथा कथयेयुः। न सम्भवत्येव ध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित्। कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तेष्वेव चारुत्वहेतुष्वन्तर्भावात्। तेषामन्यतमस्यैव वा अपूर्वसमाख्यामात्रकरणे यत्किंचन कथनं स्यात्।

पुनः जो दूसरे हैं वो अभाव के विषय में अन्यथा कहते हैं। उनका कथन है कि ध्वनि नामक कोई पदार्थ है ही नहीं। अभाववादियों में तीसरे कहते हैं कि ध्वनि नाम का कोई अपूर्व पदार्थ सम्भव ही नहीं है – "न सम्भवत्येव ध्वनिर्नामापूर्व: कश्चित्"। क्योंकि उन उक्त पदार्थों के अतिरिक्त अन्य कोई चारुत्व का हेतु हो ही नहीं सकता ; उन्हीं में चारुत्व के हेतु का अन्तर्भाव मान लेना चाहिए। यदि उनमें से ही किसी अन्यतम का नाम ध्वनि है तो केवल उसी नवीन वस्तु का नामकरण करने के लिए यदि ध्वनि कह रहे हैं।

किं च, वाग्विकल्पानामानन्त्यात् सम्भवत्यपि वा कस्मिंश्चित् काव्यलक्षणविधायिभिः प्रसिद्धैरप्रदर्शिते प्रकारलेशे ध्वनिर्ध्वनिरिति यदेतदलीकसहृदयत्वभावनामुकुलितलोचनैर्नृत्यते, तत्र हेतुं न विद्मः। सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलङ्कारप्रकाराः प्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च। न च तेषामेषा दशा श्रूयते। तस्मात् प्रवादमात्रं ध्वनिः। न त्वस्य क्षोदक्षमं तत्त्वं किञ्चिदपि प्रकाशयितुं शक्यम्।

और कथन शैलियों के बहुत से प्रकार होने से प्रसिद्ध काव्यलक्षणकारों द्वारा अप्रदर्शित कोई छोटा प्रकार सम्भव भी है तब भी ध्वनि-ध्वनि कहकर नर्तन किया जा रहा है उसका कोई उचित कारण प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि अन्य हजारों काव्यशास्त्रीय महात्माओं ने अलङ्कारप्रकार को प्रकाशित किया भी है और प्रकाशित कर भी रहे हैं। उनमें ऐसी दशा नहीं सुनी गई है। इसलिए ध्वनि एक प्रवादमात्र है, जिसका विचार योग्य तत्त्व कुछ भी नहीं बताया जा सकता है।

तथा चान्येन कृत एवात्र श्लोकः -

यस्मिन्नस्ति न वस्तु किञ्चन मनःप्रह्लादि सालङ्कृति
व्युत्पन्नै रचितं न चैव वचनैर्वक्रोक्तिशून्यं च यत् ।
काव्यं तद् ध्वनिना समन्वितमिति प्रीत्या प्रशंसन् जडो
नो विद्मोऽभिदधाति किं सुमतिना पृष्टः स्वरूपं ध्वनेः ॥

इसी आशय से ध्वन्यालोककार ने एक श्लोक कहा है –

जिसमें अलङ्कारयुक्त, इसलिए मन को आह्लादित करने वाला कोई वर्णनीय अर्थतत्त्व नहीं है। इससे अर्थालङ्कार के अभाव की सूचना मिलती है। जो काव्य चातुर्य से युक्त सुन्दर शब्दों से विरचित नहीं हुआ है, उसमें शब्दालङ्कार के अभाव की सूचना मिलती है, जिसमें सूक्तियाँ शून्य होती हैं, उनमें गुणों का अभाव होता है, इस प्रकार जो शब्द के चारुत्वहेतु उपमादि अलङ्कारों एवं अनुप्रासादि तथा शब्दार्थसंघटना, माधुर्यादि गुणों से शून्य है उसको ध्वनि से युक्त उत्तम काव्य कहकर प्रीतिपूर्वक प्रशंसा करने वाला मूर्ख, किसी विद्वान् से पूछने पर ध्वनि का क्या स्वरूप बतायेगा?

भाक्तमाहुस्तमन्ये । अन्ये तं ध्वनिसंज्ञितं काव्यात्मानं गुणवृत्तिरित्याहुः । यद्यपि च ध्वनिशब्दसङ्कीर्तनेन काव्यलक्षणविधायिभिर्गुणवृत्तिरन्यो वा न कश्चित् प्रकारः प्रकाशितः, तथापि अमुख्यवृत्त्या' काव्येषु व्यवहारं दर्शयता ध्वनिमार्गो मनाक् स्पृष्टोऽपि, न लक्षित इति परिकल्प्यैवमुक्तम्, भाक्तमाहुस्तमन्ये इति ।

भाक्तवाद में प्रयुक्त भक्ति शब्द का अर्थ भाक्त अर्थात् लक्षणा से है। भाक्तवादियों के अनुसार ध्वनि पदार्थ का लक्षणा में ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि ध्वनि नामक जो काव्य की आत्मा कहा जा रहा है, उसको गुणवृत्ति मान लेना चाहिए। यद्यपि ध्वनि शब्द के कथन से काव्यलक्षण करनेवालों ने किसी अन्य प्रकार का नहीं कथन किया है और नहीं प्रकाशित किया है तो इस अमुख्यवृत्ति के द्वारा काव्य व्यवहार को दिखलाते हुए ध्वनिमार्ग का यदि थोड़ा भी स्पर्श किया हो ; ऐसा नहीं दिखता है इस परिकल्पना को करके ऐसा कहा गया है कि इसे भाक्त अर्थात् लक्षणा ही मान लेना चाहिए।

केचित् पुनर्लक्षणकरणशालीनबुद्धयो ध्वनेस्तत्त्वं गिरामगोचरं सहृदयहृदयसंवेद्यमेव समाख्यातवन्तः । तेनैवंविधासु विमतिषु स्थितासु सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपं ब्रूमः ।

कुछ प्रगल्भमति वाले ऐसे है जो ध्वनि को स्वीकार तो करते हैं किन्तु उनके मतानुसार ध्वनि को अलक्षणीय, अनिर्वचनीय अथवा वाणी से परे केवल सहृदयसंवेद्य ही मानना चाहिए। ऐसे प्रकार में अनेक विमतियाँ स्थित हो गई हैं ; अतः सहृदयों के मन की प्रसन्नता के लिए उसके स्वरूप का ख्यापन करते हैं।

तस्य हि ध्वनेः स्वरूपं सकलसत्कवि काव्योपनिषद्भूतम्, अतिरमणीयम्, 'अणीयसीभिरपि चिरन्तनकाव्यलक्षणविधायिनां बुद्धिभिरनुन्मीलितपूर्वम् । अथ च रामायणमहाभारतप्रभृतिनि लक्ष्ये सर्वत्र प्रसिद्धव्यवहारं लक्षयतां सहृदयानाम् आनन्दो मनसि लभतां प्रतिष्ठामिति प्रकाश्यते।

इस प्रकार काव्य के सभी भेदों में जो व्यङ्ग्यार्थ की स्फुट प्रतीति होती है, वही ध्वनि का पूर्ण लक्षण है-

सर्वेष्वेव भेदेषु स्फुटत्वेनावभासनम्।

यत् व्यङ्ग्यस्याङ्गिभूतस्य तत्पूर्णं ध्वनिर्लक्षणम् ।।

उस ध्वनि के स्वरूप समस्त महाकवियों के काव्यों का परम रहस्यभूत, अत्यन्त प्राचीन काव्यलक्षणकारों की सूक्ष्म बुद्धि से उत्पन्न नहीं हुआ है। इसलिए रामायण, महाभारत आदि लक्ष्य ग्रन्थों में सभी उसके प्रसिद्ध व्यवहार को परिलक्षित करने वाले सहृदयों के मन में आनन्द प्रतिष्ठा को प्राप्त करे, इसलिए उसको प्रकाशित किया जाता है। अन्ततः यहीं कहा जा सकता है वहाँ कुछ विद्वानों ने कहा है कि काव्य का शरीर तो शब्द और अर्थ है और उसमें शब्द के द्वारा जो कारण (अनुप्रास आदि) प्रसिद्ध ही हैं और जो अर्थगत उपमा आदि हैं, वें भी प्रसिद्ध हैं। वर्णसंघटना धर्म जो माधुर्य आदि गुण हैं, वे भी प्रसिद्ध ही हैं और प्रतीत भी होते हैं, उन अलङ्कार और गुण से अभिन्न रहने वाली जो वृत्तियाँ हैं, वें भी कई विद्वानों के द्वारा अलङ्कार आदि भी प्रकाशित ही की ही गई हैं, वें भी सुनने में आई हैं, वें प्रवृत्तियाँ, रीतियाँ आदि भी श्रवणगोचर हुई हैं, उनके अतिरिक्त यह कौन है, जो ध्वनि नाम का पदार्थ है, अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसे हम ध्वनि शब्द प्रदान कर सकते हैं। कुछ लोग और कहते हैं कि ध्वनि है ही नहीं क्योंकि प्रसिद्ध प्रस्थान से अतिरिक्त काव्य के प्रकार कहने में काव्यत्व की हानि ही है। सहृदय के हृदय को आह्लाद करने वाला शब्दार्थ का संयुक्तत्व ही काव्य है और वही काव्य का मूल लक्षण है। उक्त प्रस्थानों से अतिरिक्त मार्ग संभव ही नहीं है और उस सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही ध्वनि को तैयार करके उनके द्वारा प्रसिद्ध कर दिए जाने से ध्वनि में यदि काव्य का व्यवहार कर भी लिया जाए तो भी वह कुछ ही विद्वानों को मनोग्राह्य ही होगा, अर्थात् सभी विद्वानों को वह मानोग्राही नहीं होगा अथवा सभी विद्वानों को वह प्रिय नहीं होगा, उनको पसंद नहीं आएगा। इस दृष्टि से हमें सहृदय और हृदय के तत्त्व को ही काव्य मान करके अपने काव्य का लक्षण प्रस्तुत करना चाहिए। जो अन्य लोग हैं, वें कहते हैं ध्वनि नाम का कोई रूप संभव ही नहीं है क्योंकि वह ध्वनि किसी का अतिवर्तन नहीं कर सकता। उनके द्वारा कहे गए ध्वनि

के हेतु में अन्तर्विरोध है अथवा उन्हीं में से एक को यदि मान लिया जाय कि ध्वनि नाम की कोई अपूर्व वस्तु है तो कुछ लोग का कथन होगा कि वाङ्मय में विकल्पों के अनन्त होने के कारण प्रसिद्ध काव्य लक्षणों द्वारा आप प्रदर्शित किसी प्रकार का लेश का सम्भव न होने पर भी यह ध्वनि-ध्वनि का जो उच्चारण करते हैं। अथवा जो आँख बन्द कर ध्वनिवादी नाच रहे हैं, उसका क्या कारण है, यह हमें नहीं पता है। अन्य महात्माओं ने हजारों अलङ्कारों के भेद बताएँ हैं और अभी वह ध्वनि की स्थिति नहीं सुनाई पड़ती है। अतः ध्वनि प्रवाद मात्र ही है, इसका कुछ भी विचार योग्य तत्त्व प्रकाशित करने योग्य नहीं है।

6.2.3 कारिका 02 की व्याख्या-

तत्र ध्वनेरेव लक्षयितुमारब्धस्य भूमिकां रचयितुमिदमुच्यते-

योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।

वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ॥ 2 ॥

वहाँ ध्वनि के ही लक्षण के आरम्भ की भूमिका की रचना करने के लिए यह कहते हैं –

जो अर्थ ध्वनि के रूप में सहृदयों के द्वारा प्रशंसनीय है और काव्य की आत्मा के रूप में व्यवस्थित है। वह वाच्य और प्रतीयमान के भेद से दो प्रकार से कहा गया है। अर्थात् जो सहृदयजनों के द्वारा हृदयगत होने के कारण प्रशंसनीय होकर काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। वह भी वाच्य ध्वनि और प्रतीयमान ध्वनि के भेद से द्विविध स्मृत है। जो प्रतीयमान भाग विशेष है वही तो आत्मा के रूप में व्यवस्थापित किया जाता है तो फिर वाच्य ध्वनि के भेद की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इसके उत्तर में कहते हैं कि वाच्य ध्वनि भूमिका के सदृश है। तथापि वाच्य ध्वनि की वासना से विमोहित लोग उस प्रतीयमान के पृथक् होने में विप्रतिपत्ति करते हैं ठीक वैसे ही जैसे चार्वाक लोग आत्मा को शरीर से पृथक् मानने के पक्ष में नहीं रहते हैं ; उनके लिए शरीर ही आत्मा है। अतः अर्थः इस एकवचन के अनुप्रयोग द्वारा तथा सहृदयश्लाघ्यः इस विशेषण द्वारा हेतु कहकर भेददृष्टि से उसके दो अंश आचार्य ने कहा है ; न कि यह कहा है कि दोनो अर्थ ही आत्मा हैं।

6.2.4 कारिका 03 की व्याख्या-

काव्यस्य हि ललितोचितसन्निवेशचारुणः शरीरस्येवात्मा साररूपतया स्थितः। सहृदयश्लाघ्यो योऽर्थस्तस्य वाच्यः प्रतीयमानश्च द्वौ भेदौ-

तस्य वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारैरूपमादिभिः । 3 ॥

बहुधा व्याकृतः सोऽन्यैः काव्यलक्ष्मविधायिभिः॥

काव्य का वह लालित्य रूप से सन्निविष्ट, सौन्दर्यशाली शरीर की ही आत्मा अथवा सार रूप में स्थित है और सहृदयों द्वारा प्रशंसनीय जो अर्थ है उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद है- जो वाच्यार्थ उपमा आदि के प्रकारों से प्रसिद्ध है, उसे अनेक प्रकार से अन्य काव्य के लक्षणकार व्यक्तियों ने व्याख्यायित किया है।

ततो नेह प्रतन्यते। केवलमनूद्यते पुनर्यथोपयोगमिति।

इस कारण से यहाँ उसका विस्तार नहीं करते हैं। केवल पुनः जब जैसा उपयोग होगा उसके अनुसार अनुवाद किया जाएगा।

6.2.5 कारिका 04 की व्याख्या-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥ 4 ॥

सौन्दर्यशास्त्रियों ने जिसे प्रतीयमान की संज्ञा प्रदान की है, महाकवियों ने उसे कुछ और ही वस्तु माना है। वह प्रसिद्ध चारुत्व के उत्कर्षों से अतिरिक्त स्त्रियों में लावण्य की भाँति विशेष रूप से प्रतीत होता है। महाकवियों ने प्रतीयमान अर्थ को एक विशेष सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। सहृदयों में जो प्रसिद्ध चारुत्व के हेतु हैं, अर्थात् अलङ्कार आदि अवयवों से पृथक् स्त्रियों में लावण्य की भाँति प्रकाशित होता दृष्टिगोचर होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार स्त्रियों में लावण्य पृथक् होकर प्रतीत होता है और अङ्गों से पार्थक्य रखता है, उसी प्रकार सहृदयजनों के लिए भी एक तत्त्व है, उसे प्रतीयमान अर्थ कहते हैं। काव्यशास्त्री आचार्य लावण्य का लक्षण करते हुए कहते हैं कि मोतियों में कान्ति की तरलता के समान जो वस्तु अङ्गों के अन्दर दिखायी देती है, उसे लावण्य कहा जाता है-

मुक्ताफालेषु छायायास्तरलत्वमिवान्टर।

सङ्लक्ष्यते यदङ्गेषु तल्लावन्यमिहोच्यते ॥

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वाच्यात् वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् । यत् तत् 'सहृदयसुप्रसिद्धं प्रसिद्धेभ्योऽलङ्कृतेभ्यः प्रतीतेभ्यो वावयवेभ्यो व्यतिरिक्तत्वेन प्रकाशते लावण्यमिवाङ्गनासु । यथा ह्यङ्गनासु लावण्यं पृथक् निर्वर्ण्यमानं निखिलावयवव्यतिरेकि किमप्यन्यदेव सहृदयलोचनामृतं तत्त्वान्तरं तद्वदेव सोऽर्थः ।

महाकवियों की वाणी में उपस्थित रहने वाला प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ से अलग वस्तु ही प्रतीत होता है।

इस प्रकार का जो प्रतीयमान अर्थ है वह सहृदयों में अत्यन्त कीर्ति को प्राप्त करता है और कीर्तिलब्ध अलङ्कारों से भिन्नता रखता है । यह रमणियों के प्रसिद्ध अवयव मुख नासिका आदि से भिन्न लावण्य आदि के समान प्रतीत होता है जिस प्रकार स्त्रियों में रहने वाला लावण्य उनके अन्य सभी अवयवों से पृथक् देखा जाता है उसी प्रकार वह सहृदयों के लोचन अर्थात् आँखों को अमृत तुल्य प्रतीत होता है ,इस प्रकार से वह प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ से अलग ही प्रतीत होता है।

स ह्यर्थो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तं वस्तुमात्रम्, 'अलङ्काररसादयश्चेत्यनेकप्रभेदप्रभिन्नो दर्शयिष्यते । सर्वेषु च तेषु प्रकारेषु तस्य वाच्यादन्यत्वम् । तथा हि, आद्यस्तावत् प्रभेदो वाच्याद् दूरं विभेदवान्।

वह प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ के सामर्थ्य से आक्षिप्त केवल वस्तु, अलङ्कार और रसादि के प्रभेद से भिन्न -भिन्न प्रकार के होते हैं। जिसके विषय में आगे बताया जायेगा। उन सभी प्रकार के भेदों में सबसे पहला भेद प्रतीयमान अर्थ का वाच्यार्थ से वस्तु ध्वनि का है जो कि वाच्यार्थ से बिल्कुल भिन्न है ।

स हि कदाचिद् वाच्ये विधिरूपे प्रतिषेधरूपः । यथा-

भम धम्मिअ वीसत्थो सो सुनओ अज्ज मारिओ देण ।

गोलाणइकच्छकुडंगवासिणा दरिअसीहेण ॥ ॥

भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।

गोदानदीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन ॥ इतिच्छाया]

वह कभी वाच्यार्थ के विधि रूप होने से प्रतिषेध रूप में हो जाता है। जैसे-

हे धार्मिक ! आप यहाँ बिना किसी भय के भ्रमण करें, आज गोदावरी नदी के तट के समीप कुञ्ज में रहने वाले सिंह के द्वारा आपके भय का कारण बने हुए उस कुत्ते को मार दिया गया है । यहाँ पर वाच्यार्थ निडर भ्रमण करना विधिरूप तो है। परन्तु नरभक्षी सिंह के आ जाने के कारण इसका प्रतीयमान अर्थ निषेधरूप है।

क्वचिद्वाच्ये प्रतिषेधरूपे विधिरूपो यथा-

अत्ता एत्थ णिमज्जइ एत्थ अहं दिअसअं पलोएहि ।

मा पहिअ रत्तिअन्धअ सेज्जाए मह णिमज्जहिसि ।।

[श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय ।

मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमंक्ष्यसि ॥ इति च्छाया]

कहीं वाच्यार्थ के प्रतिषेध रूप होने से प्रतीयमान अर्थ विधि रूप हो जाता है। जैसे -

हे रात्र्यन्ध अर्थात् रतौधीं रोग से ग्रस्त पथिक ! इस शयन कक्ष का दिवस में ही सावधानीपूर्वक अवलोकन कर लो, उस ओर मेरी सास शयन करती है और इस ओर मैं, इसलिए तुम गलती से मेरी शय्या पर मत गिर जाना। यहाँ पर वाच्यार्थ से प्रतीयमान अर्थ की स्पष्टतया भिन्नता प्रतीत होती है।

क्वचिद् वाच्ये विधिरूपेऽनुभयरूपो यथा-

बच्च मह व्विअ एक्केइ होन्तु णीसासरोइअव्वाइ ।

मा तुज्झ वि तीअ विणा दक्खिण्णहअस्स जाअन्तु ॥

[व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निःश्वासरोदितव्यानि ।

मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत ॥ इति च्छाया]

कहीं पर वाच्यार्थ विधिरूप होने पर भी उसका प्रतीयमान अर्थ विधिरूप तथा प्रतिषेध रूप दोनों में ही नहीं रहता। जैसे- तुम यहाँ से प्रस्थान करो, मैं अकेली ही इस नि:श्वास और रुदन की पीड़ा को सहन कर लूंगी। कहीं तुम्हें भी दाक्षिण्य के कारण वह सब कष्ट सहन न कर पड़ जाये। यहाँ पर व्रज का वाच्यार्थ विधिरूप तो है परन्तु प्रतीयमान अर्थ विधि तथा प्रतिषेध रूप दोनों से भिन्न अनुभयात्मक रूप है।

क्वचिद् वाच्ये प्रतिषेधरूपेऽनुभयरूपो यथा-

दे आ पसिअ णिवत्तसु मुहससिजोह्णाविलुत्ततमणिवहे ।

अहिसारिआण विग्धं करोसि अण्णाण वि हआसे ।।

[प्रार्थये तावत् प्रसीद निवर्तस्व मुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे ।

अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासामपि हताशे ॥ इति च्छाया]

कहीं पर वाच्यार्थ के प्रतिषेध रूप में रहने पर भी प्रतीयमान अर्थ विधि तथा प्रतिषेध रूप में नहीं रहता है। जैसे - अरी हताशे ! मेरी तुमसे प्रार्थना है कि प्रसन्न हो जाओ और वापस आ जाओ क्यों तुम अपनी चन्द्र तुल्य मुख की चाँदनी से इस गहन अन्धकार को दूर करके अन्य अभिसारिकाओं के कार्य के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रही हो। यहाँ पर वाच्यार्थ प्रतिषेध रूप तो है परन्तु प्रियतम की चाटुकारिता ही विशेष रूप से प्रतीयमान है जो कि विधिरूप और प्रतिषेध रूप से भिन्न अनुभयात्मक है।

क्वचिद्वाच्याद् विभिन्नविषयत्वेन व्यवस्थापितो यथा-

कस्स वा ण होइ रोसो दट्ठुण पियाएँ सव्वणं अहुरम् ।

सभमरप उमग्घाइणि वारिअवामे सहसु एह्निम् ॥

[कस्य वा न भवति रोषो दृष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम् ।

सभ्रमरपद्माघ्रायिणि वारितवामे सहस्वेदानीम् ॥ इति च्छाया]

कहीं पर विषय के भिन्न रहने पर भी वाच्यार्थ से प्रतीयमान अर्थ का भेद होता है। जैसे- प्रिया के अन्य निमित्तक सव्रण अधर को देखकर किसको क्रोध नहीं आता। मना करने पर भी न मानकर भ्रमरसहित कमलको सूंघनेवाली तू अब उसका फल भोग। यहाँ वाच्यार्थ का विषय तो अविनीता है किन्तु उसका व्यङ्ग्य अर्थ है कि उसका व्रण परपुरुषजन्य नहीं अपितु भ्रमरदशनजन्य है अतः इसका अपराध नहीं है। इस व्यङ्ग्य का विषय नायक है। इसलिए यहाँ वाच्य और व्यङ्ग्य का विषयभेद होने से व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ से भिन्न है।

अन्ये चैवंप्रकाराः वाच्याद् विभेदिनः प्रतीयमानभेदाः सम्भवन्ति । तेषां दिङ्मात्रमेतत् प्रदर्शितम्। द्वितीयोऽपि प्रभेदो वाच्याद् विभिन्नः स्पष्टमयं दर्शयिष्यते ।

और इस प्रकार ही अन्य भी प्रकार वाच्य के भेद से प्रतीयमान भेद के रूप में सम्भावित होते हैं। उनका केवल दिङ्मात्र रूप से यहाँ प्रदर्शन किया गया। द्वितीय जो भेद है वह वाच्य की भिन्नता के स्पष्ट रूप से दिखलाया जाएगा।

तृतीयस्तु रसादिलक्षणः प्रभेदो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तः प्रकाशते, न तु साक्षाच्छन्दव्यापारविषय इति वाच्याद् विभिन्न एव। तथा हि, वाच्यत्वं तस्य स्वशब्दनिवेदितत्वेन वा स्यात्, विभावादिप्रतिपादनमुखेन वा। पूर्वस्मिन् पक्षे स्वशब्दनिवेदितत्वाभावे रसादीनामप्रतीतिप्रसङ्गः। न च सर्वत्र तेषां स्वशब्दनिवेदितत्वम्। यत्राप्यस्ति तत्, तत्रापि विशिष्ट विभावादिप्रतिपादन-मुखेनैवैषां प्रतीतिः । स्वशब्देन सा केवलमनूद्यते, न तु तत्कृता । विषयान्तरे तथा तस्या अदर्शनात्।

तीसरा रसध्वनि रसादि रूप वाच्य की सामर्थ्य से आक्षिप्त होकर प्रकाशित होता है, वह अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्या शक्तिव्यापार का विषय नहीं होता, इसलिए वाच्यार्थ से भिन्न है। क्योंकि उसे वाच्य माना जाय तो उसकी वाच्यता दो प्रकार से मानी जाती है या तो स्वशब्द से हो सकती है या तो विभावादि प्रतिपादन द्वारा। पहले पक्ष में जहाँ रस शब्द अथवा श्रृङ्गारादि शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है परन्तु विभावादि का प्रतिपादन किया गया है। विषयान्तर में तो उसके अदर्शन होने के कारण स्वशब्द से केवल उसका अनुवादमात्र द्योतित किया गया है ; ऐसा नहीं है ; जबकि उसका विद्यान उसके द्वारा नहीं किया गया है।

न हि केवलं श्रृङ्गारादिशब्दमात्रभाजिविभावादिप्रतिपादनरहिते काव्ये मनागपि रसवत्त्वत्प्रतीतिरस्ति । यतश्च स्वाभिधानमन्तरेण केवलेभ्योऽपि विभावादिभ्यो विशिष्टेभ्यो रसादीनां प्रतीतिः। केवलाच्च स्वाभिधानादप्रतीतिः । तस्माद-न्वयव्यतिरेकाभ्यामभिधेयसामर्थ्याक्षिप्तत्वमेव रसादीनाम् । न त्वभिधेयत्वं कथञ्चित् । इति तृतीयोऽपि प्रभेदो वाच्याद् भिन्न एवेति स्थितम् । वाच्येन त्वस्य सहेव प्रतीतिरग्रे दर्शयिष्यते ।

केवल श्रृङ्गारादि शब्द होने पर तथा विभावादि के प्रतिपादन से रहित काव्य तनिक भी रसयुक्त नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि रसादि के अभिधान से रहित भी मात्र विभावादि से विशिष्ट रसादि की प्रतीति होती है तथा विभावादि से रहित रसादि मात्र शब्दों के प्रयोग से रस की प्रतीति नहीं होती है। इसलिए अन्वय तथा व्यतिरेक से यह अर्थ सिद्ध हो जाता है कि रसादि अर्थ के सामर्थ्य से आक्षिप्त होता है। वह किसी भी प्रकार से अभिधेय नहीं होता है। इस प्रकार ध्वनि का तीसरा प्रभेद रसादि ध्वनि वाच्यार्थ से भिन्न ही होता है। वाच्यार्थ के साथ के समान ही इसकी प्रतीति होती है। इसका प्रतिपादन आगे किया जायेगा ।

6.2.6 कारिका 05 की व्याख्या-

काव्यस्त्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥ 5 ॥

काव्य की आत्मा का वही अर्थ है जैसा कि प्राचीनकाल में बहेलिये के द्वारा आहत क्रौञ्च पक्षी युगल के वियोग से उत्पन्न शोक आदिकवि का श्लोक बन गया।

'विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चचारुणः काव्यस्य स एवार्थः सारभूतः । तथा चादिकवेर्वाल्मीकेर्निहतसहचरीविरहकातरक्रौञ्चाक्रन्दजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः ।

विविध प्रकार के शब्द, अर्थ और उनके सङ्घटना के संयोग से काव्य के सारभूत तत्त्व अर्थात् आत्मा प्रतीयमान अर्थ है। इसीलिए बाणाहत वह क्रौञ्च सहचरी के वियोग में क्रन्दन से उत्पन्न आदिकवि वाल्मीकिनिष्ठ शोक मा निषाद रुपी श्लोक में परिणत हुआ।

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

शोको हि करुणरसस्थायिभावः। प्रतीयमानस्य चान्यभेददर्शनेऽपि रसभावमुखेनैवोपलक्षणं प्राधान्यात् ।

हे निषाद तुमने काममोहित क्रौञ्चयुगल में से एक को मार डाला। अतः तुम जीवन पर्यन्त प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो पाओगे (अर्थात् दीर्घकाल तक तुम प्रतिष्ठारहित एवं शापित रहोगे)। इस प्रकार प्रतीयमान अर्थ के अन्यभेद के दर्शन होने पर भी रसभावमुख के द्वारा उपलक्षण की प्रधानता के कारण करुण रस का स्थायीभाव शोक है।

क्रौञ्च एवं क्रौञ्ची में कौन मारा गया था इस विषय में ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा वृत्तिभाग में कथित 'निहतसहचरीविरहकातरक्रौञ्चाक्रन्दजनितः' की व्याख्या में 'सहचरीहननोद्भूतेन' लिखा है, जिससे यह प्रश्न उपस्थित हुआ । वस्तुतः 'मा निषाद!प्रतिष्ठां' के उत्तरार्द्ध में 'काममोहितम एकम् अवधीः'से स्पष्ट है कि क्रौञ्च का वध हुआ था क्रौञ्ची का नहीं । यदि क्रौञ्ची का वध हुआ होता तो 'काममोहिताम एकाम्, का प्रयोग हुआ होता । रही बात 'निहतसहचरीविरहकातरक्रौञ्चाक्रन्दजनितः' पद की तो पुल्लिङ्गान्त होने के कारण क्रौञ्च पक्षी मारा गया था, ऐसा ध्वनित हो रहा है। उक्त पद में दो विशेषण है- 'निहत' एवं 'सहचरीकातर' । यहाँ निहत; सहचरी का विशेषण नहीं है । जैसे लौकिक पुरुषों को अपनी मृत्यु जानकर अपने प्रियजनों से बिछुड़ने का दु:ख पीड़ित करता है, ठीक वैसे निषादशराविध्द क्रौञ्च को क्रौञ्ची से वियोग का दु:ख पीड़ित कर रहा है । अत: वाल्मीकिरामायण के श्लोक 'मा निषाद!' के अनुरूप क्रौञ्च का वध हुआ था, क्रौञ्ची का नहीं।

6.2.7 कारिका 06 की व्याख्या-

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम् ।

अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्॥ 6 ॥

जिस आस्वादमय अर्थात् रसरूप अर्थतत्त्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी उनके अलौकिक, प्रतीत होने वाले अपूर्ववस्तु नव नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करती है।

तत् वस्तुतत्त्वं निःष्यन्दमाना महतां कवीनां भारती अलोकसामान्यं प्रतिभाविशेषं परिस्फुरन्तम् अभिव्यनक्ति। येनास्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते

प्रतीयमान अर्थतत्त्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी प्रतिभासमान प्रतिभा विशेष को व्यक्त करती है, जिसके प्रभाव से ही नानाविध कवि परम्परा के संवाहक इस संसार में कालिदास आदि दो-तीन या पांच-छः ही महाकवि के रूप में गिने जाते हैं। 'प्रतिभा' के कारण ही कोई कवि प्रतीयमान अर्थ से युक्त रचना कर सकने में समर्थ होता है। राजशेखर अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्य मीमांसा में 'प्रतिभा' का लक्षण करते हुए लिखते हैं- "प्रज्ञा नव नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा मता।" अर्थात् उत्तरोत्तर नवीन अर्थ को व्यक्त करने वाली प्रज्ञा प्रतिभा कहलाती है। जिन कवियों में यह प्रतिभा हुआ करती है, वही कवि महाकवित्व को प्राप्त करते हैं। ध्वन्यलोककार की दृष्टि में ऐसे महाकवि काव्यसर्जन जगत् में कालिदास आदि दो-तीन अथवा पांच-छ: ही हैं अर्थात् महाकवियों की संख्या बहुत कम है।

6.2.8 कारिका 07 की व्याख्या-

इदं चापरं प्रतीयमानस्यार्थस्य सद्भावसाधनं प्रमाणम्-

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।

वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥ 7 ॥

और प्रतीयमान अर्थ के अस्तित्व को सिद्ध करने वाले दूसरे भी प्रमाण है- वह प्रतीयमान अर्थ व्याकरणादि एवं कोशादि के ज्ञानमात्र से ही प्रतीत नहीं होता अपितु वह तो काव्य के जानने वालों या काव्यानुशीलन करने वालों को ही विदित होता है।

सोऽर्थो यस्मात्केवलं काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव ज्ञायते। यदि च वाच्य रूप एवासावर्थ: स्यात्तद्वाच्यवाचकरूपपरिज्ञानादेव तत्प्रतीति: स्यात्। अथ च वाच्यवाचकलक्षणमात्रकृतश्रमाणां काव्यतत्त्वार्थभावनाविमुखानां स्वरश्रुत्यादिलक्षणमिवाप्रगीतानां गान्धर्वलक्षणविदामगोचर एवासावर्थ:।

केवल काव्य के अर्थ को जानने वाले ही उस अर्थ को जान सकते हैं। यदि वह अर्थ केवल वाच्यरूप ही होता तो शब्द और अर्थ के ज्ञान से ही उसकी प्रतीति होती। केवल पुस्तक से गन्धर्वविद्या को सीख लेने वाले विशिष्ट ज्ञान के अनभ्यासी स्वरश्रुति रहस्य विद्या के समान, काव्य के अर्थ से रहित केवल वाच्य-वाचक, कोशादि शास्त्र और व्याकरणादि शब्दशास्त्र में निपुण पुरुषों के लिए वह अर्थात् प्रतीयमान अर्थ अज्ञात ही रहता है।

6.2.9 कारिका 08 की व्याख्या-

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन ।

यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः ॥ 8 ॥

प्रतीयमान अर्थ और उसके निरूपण में योग्यता रखने वाले शब्द इन दोनों को व्यवस्थित रूप से पहचानने का प्रयत्न उन्हें जो महाकवि बनना चाहते है, करना चाहिए।

व्यङ्ग्योऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन, न शब्दमात्रम् । तावेव शब्दार्थौ महाकवे: प्रत्यभिज्ञेयौ। व्यङ्ग्यव्यञ्जकाभ्यामेव सुप्रयुक्ताभ्यां महाकवित्वलाभो महाकवीनां, न वाच्यवाचकरचनामात्रेण।

उस व्यङ्ग्य अर्थ और उसको अभिव्यक्त करने की वृत्ति से युक्त कोई विशेष शब्द ही है, सारे शब्द से नहीं। महाकवि की ओर प्रवृत्त

होने वाले को वही शब्द और अर्थ को भली प्रकार जान लेना चाहिए। महाकवि की प्रतिष्ठा व्यङ्ग्य और व्यञ्जक के समुचित प्रयोग से ही प्राप्त होती है, वाच्य-वाचक रचना मात्र से नहीं।

6.2.10 कारिका 09 की व्याख्या-

इदानीं व्यङ्ग्यव्यञ्जकयोः प्राधान्येऽपि यद्वाच्यवाचकावेव प्रथममुपाददते कवयस्तदपि युक्तमेवेत्याह –

अब जो व्यङ्ग्य एवं व्यञ्जक की प्रधानता में भी जो वाच्य और वाचक है, उन्हीं का प्रतिपादन कविलोग प्रथमतः करते हैं और यह युक्तियुक्त भी है। इसलिए कहते हैं कि-

आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवाञ्जनः ।

तदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदादृतः ॥ 9 ॥

जैसे आलोक अर्थात् पदार्थ दर्शन की इच्छा रखने वाले पुरुष; उसका उपाय होने के कारण दीपशिखा के विषय में यत्न करते हैं जैसे व्यङ्ग्यार्थ में आदरणीय कवि वाच्यार्थ का उपादान करते हैं।

यथा आलोकार्थी सन्नपि दीपशिखायां यत्नवाञ्जनो भवति, तदु पायता। न हि दीपशिखामन्तरेणालोक: सम्भवति। तद्वद्व्यङ्ग्यमर्थं प्रत्यादृतो जनो वाच्येऽर्थे यत्नवान्भवति। अनेन प्रतिपादकस्य कवेर्व्यङ्ग्यमर्थं प्रति व्यापारो दर्शित:।

जैसे प्रकाश रूप अर्थ होने पर भी मनुष्य दीपशिखा के विषय में उपायरूप होने से प्रथम प्रयत्न करते हैं, क्योंकि दीपशिखा के बिना आलोक हो ही नहीं सकता। उसी प्रकार व्यङ्ग्यार्थ को जानने वाले पुरुष वाच्यार्थ में भी समर्थ होते हैं। कवि सहृदयों के बोध का विषय बनाने की इच्छा से सभी प्रकार के वाच्यार्थों को प्रदर्शित करता है।

6.2.11 कारिका 10 की व्याख्या-

यथा पदार्थद्वारेण वाक्यार्थः सम्प्रतीयते ।

वाच्यार्थपूर्विका तद्वत्प्रतिपत्तस्य वस्तुनः ॥ 10 ॥

जिस प्रकार पदार्थ की उपस्थिति के पश्चात् पदार्थसंसर्ग रूप वाक्यार्थ की प्रतीति होती है, उसी प्रकार व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति वाच्यार्थ ज्ञान से युक्त होती है।

यथा हि पदार्थद्वारेण वाक्यार्थावगमस्तथा वाच्यार्थप्रतीतिपूर्विका व्यङ्ग्यस्यार्थस्य प्रतिपत्ति:।

जिस प्रकार पदार्थ से वाक्यार्थ का बोध होता है, उसी प्रकार वाच्यार्थ की प्रतीतिपूर्वक व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है।

पदार्थ एवं वाक्यार्थ बोध में पौर्वापर्य हुआ करता है, किन्तु भाषा पर असाधारण अधिकार रखने वाले परिणत बुद्धि वालों को पदार्थ ज्ञान के होते ही वाक्यार्थ बोध हो जाया करता है। इनके बीच समय का इतना कम अन्तर रहता है कि वह समझ में नहीं आता कि पहले पदार्थ ज्ञान हुआ या वाक्यार्थ बोध, जबकि जिन्हें भाषा पर अधिकार नहीं होता, उन्हें पहले पदार्थ समझना पड़ता है, तत्पश्चात् वाक्यार्थ बोध हुआ करता है। ठीक उसी प्रकार व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति भी वाच्यार्थपूर्विका हुआ करती है। पद्मशतपत्रभेदन्यायेन पहले वाच्यार्थ की प्रतीति होती है, उसके बाद क्रमशः व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति हुआ करती है, जैसे कमल के सैकडों पत्ते रखकर एक साथ उसमें छेद किया जाय, तो पत्तों में छेद होने का क्रम तो रहता है, किन्तु इनके बीच में कालिकभेद इतना सूक्ष्म होता है कि उस क्रम का अनुभव नहीं हो पाता, वैसे ही पहले वाच्यार्थ की प्रतीति होती है, उसके बाद ही व्यङ्ग्यार्थ-प्रतीति होती है। यह प्रतीति सहृदयों को अत्यन्त शीघ्रता से होती है, जिस कारण उसका अनुभव नहीं हो पाता। जो असहृदय हैं, उन्हें क्रम का अनुभव हुआ करता है। ध्वन्यालोककार द्वारा यहाँ पर असलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य की ओर संकेत किया गया है।

6.2.12 कारिका 11 की व्याख्या-

इदानीं वाच्यार्थप्रतीतिपूर्वकत्वेऽपि तत्प्रतीतेर्व्यङ्ग्यस्यार्थस्य प्राधान्यं यथा न विलुप्यते तथा दर्शयति-

अब उस (व्यङ्ग्य) की प्रतीति वाच्यार्थ प्रतीतिपूर्वक होने पर भी व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता का जिस प्रकार लोप (व्यालुप्त) नहीं किया गया है, उसको प्रदर्शित करते हैं-

स्वसामर्थ्यवशेनैव वाक्यार्थं प्रतिपादयन्।

यथा व्यापारनिष्पत्तौ पदार्थो न विभाव्यते ॥ 11 ॥

यथा स्वसामर्थ्यवशेनैव वाक्यार्थं प्रकाशयन्नपि पदार्थो व्यापारनिष्पत्तौ न भाव्यते विभक्ततया।

जिस प्रकार पदार्थ अपनी आकाङ्क्षा, योग्यता, सन्निधि संसर्गरूप वाक्यार्थ को प्रकाशित करते हुए भी वाक्यार्थबोधन व्यापार पूर्ण हो जाने पर पदार्थ अलग प्रतीत नहीं होता है। जैसे अपने सामर्थ्य (आकाङ्क्षा, योग्यता एवं आसत्ति) से ही वाक्यार्थ को प्रकटित करने पर भी व्यापार के निष्पत्ति में पदार्थ भिन्न-भिन्न भावित नहीं होते हैं।

6.2.13 कारिका 12 की व्याख्या-

तद्वत्चेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम्।

बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते ॥ 12 ॥

इसी प्रकार वाच्यार्थ से विमुख अर्थात् अपरितुष्ट सहृदयों की तत्त्वदर्शनसमर्थ या काव्यमर्मग्राहिणी बुद्धि में प्रतीयमान अर्थ सद्यः ही अवभासित हो जाता है।

6.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. व्याकरणादि शास्त्रों में निपुण पुरुषों के लिए प्रतीयमान अर्थ होता है -

    (क) ज्ञात (ख) अज्ञात (ग) ज्ञाताज्ञात (घ) अज्ञाताज्ञात

2. व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है -

    (क) वाच्यार्थ से युक्त (ख) अक्षर से युक्त (ग) वर्ण से युक्त (घ) अभिधा से युक्त

3. सहृदय की बुद्धि में प्रतीयमान अर्थ कब प्रकाशित होता है-

    (क) सद्यः (ख) कालान्तर में (ग) देशान्तर में (घ) विलम्ब से

4. प्रतीयमान अर्थ अभिव्यक्त होता है -

    (क) लावण्य के सदृश (ख) रीति के सदृश (ग) वक्रोक्ति के सदृश (घ) औचित्य के सदृश

5. शोकः श्लोकत्वमागतः यह प्रथम उद्योत की कौन सी कारिका है-

    (क) चौथी (ख) पाँचवीं (ग) छठवी (घ) सातवीं

6. वाच्यार्थ कीदृश प्रसिद्ध है-

    (क) उपमादि प्रकारों के सदृश (ख) गुणादि प्रकारों के सदृश

    (ग) रीत्यादि प्रकारों के सदृश (घ) अनुप्रासादि के सदृश

7. आकाङ्क्षा, योग्यता एवं सन्निधि से क्या प्रकाशित होता है-

    (क) पदार्थ (ख) वाक्यार्थ (ग) अक्षरार्थ (घ) वर्णार्थ

8. लोचनकार अभिनवगुप्त ने ध्वनि के कितने भेद माने हैं-

(क)	चार	(ख)	तीन	(ग)	दो	(घ)	पाँच

9. आनन्दवर्धन ने प्रमुख रूप से ध्वनि के कितने भेद माने हैं-

(क)	चार	(ख)	तीन	(ग)	दो	(घ)	पाँच

10. 'शोकः श्लोकत्वमागतः' किस महर्षि के विषय में कहा गया है-

(क)	महर्षि अगस्त्य	(ख)	महर्षि पराशर	(ग)	महर्षि वाल्मीकि	(घ)	महर्षि वशिष्ठ

6.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. प्रतीयमान ध्वनि की व्याख्या कीजिए।
2. वाच्य ध्वनि का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. 'शोकः श्लोकत्वमागतः' की व्याख्या कीजिए।
4. 'काव्यस्यात्मा स एवार्थः' की व्याख्या कीजिए।
5. वाच्यार्थ का निरूपण कीजिए।

6.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. व्यङ्ग्यार्थ पर प्रकाश डालिए।
2. वाच्यार्थ के विविध रूपों पर प्रकाश डालिए।
3. वाच्य ध्वनि का निरूपण कीजिए।
4. ध्वनि के मूल स्वरूप का वर्णन करते हुए उसके भेदों को स्पष्ट कीजिए।
5. प्रतीयमानार्थ पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 7 कारिका 13 से 19 तक की व्याख्या (प्रथम उद्योत)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कारिका व्याख्या

7.2.1 कारिका 13 की व्याख्या

7.2.2 कारिका 14 की व्याख्या

7.2.3 कारिका 15 की व्याख्या

7.2.4 कारिका 16 की व्याख्या

7.2.5 कारिका 17 की व्याख्या

7.2.6 कारिका 18 की व्याख्या

7.2.7 कारिका 19 की व्याख्या

7.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

7.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

7.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण की व्याख्या का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की 13 से लेकर 19 कारिकाओं तक की व्याख्या का अभिज्ञान कर सकेंगे।
- कारिका 13 से 19 तक के मध्य के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की पहचान कर सकेंगे।
- ध्वनि के लक्षण, भेद आदि का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वनि के सम्बन्ध में विविध मतों की समीक्षा कर सकेंगे।
- काव्यों में ध्वनित्व की पहचान कर सकेंगे।
- स्वकाव्य रचना में ध्वनि तत्त्व का निर्माण करने में समर्थ होंगे।

7.1 प्रस्तावना

ध्वन्यालोक की इस इकाई में ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की कारिका 13 से लेकर कारिका 19 तक की व्याख्या भी की जाएगी। स्थान-स्थान पर वर्णन क्रम में ध्वन्यालोक की वृत्ति की भी व्याख्या की जाएगी और यथास्थान अभिनवगुप्तविरचित लोचन टीका को भी उद्धृत किया जायेगा।

7.2 कारिका व्याख्या

7.2.1 कारिका 13 की व्याख्या -

एवं वाच्यव्यतिरेकिणो व्यङ्ग्यस्यार्थस्य सद्भावं प्रतिपाद्य प्रकृत उपयोजयन्नाह-

इस प्रकार वाच्यार्थ से अतिरिक्त जो व्यङ्ग्यार्थ की सत्ता एवं उसके प्राधान्य का प्रतिपादन करके प्रकृत में उसका उपयोग बतलाते हुए कहते हैं-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ 13 ॥

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि की संज्ञा प्रदान की है। जहाँ अर्थ वाच्यविशेष अथवा वाचकविशेष शब्द, उस प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को ध्वनिकाव्य कहते हैं। इससे वाच्यवाचक के चारुत्वहेतु उपमादि और अनुप्रासादि अलग ही ध्वनि का विषय बताया है।

उक्त कारिका में 'वा' पद शब्द और अर्थ की प्रधानता की दृष्टि से विकल्प का बोधक है। व्यङ्ग्यार्थ की अभिव्यक्ति में शब्द और अर्थ; दोनों समन्वित रूप से कारण हुआ करते है, किन्तु जहाँ शब्द की प्रधानता होती है, वहाँ शब्द सहकारी होता है। इस विषय में आचार्य मम्मट अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में लिखते हैं-

"शब्दप्रमाणवाद्योऽर्थो व्यनक्त्यर्थान्तरं यतः।

अर्थस्य व्यञ्जकत्वे तत् शब्दस्य सहकारिता ॥

तद्युक्तो व्यञ्जकः शब्दः यत्सोऽर्थान्तरयुकतथा।

अर्थोऽपि व्यञ्जकस्तत्र सहकारितया मता ॥

इसे साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने इस रूप में स्पष्ट किया है-

शब्दबोध्यो व्यनक्त्यर्थः शब्दोऽर्थान्तराश्रयः।

एकस्य व्यञ्जकत्वे तदन्यस्य सहकारिता॥

यत्रार्थो वाच्यविशेषः, वाचकविशेषः शब्दो वा, तमर्थं व्यङ्क्तः, स काव्यविशेषो ध्वनिरिति। अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रासादिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषय इति दर्शितम्।

जहाँ अर्थ स्वयं को या शब्द स्वयं के अर्थ को गुणीभूत कर उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उसे काव्य विशेष के विद्वान् लोग ध्वनि कहते हैं। जहाँ अर्थ वाच्यविशेष या वाचक विशेष शब्द उसे अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को ध्वनि काव्य कहते हैं। इस वाच्य, वाचक चारुत्व के हेतु उपमा आदि एवं अनुप्रास आदि से पृथक् ही ध्वनि का विषय है।

यदप्युक्तम्- "प्रसिद्धप्रस्थानातिरेकिणो मार्गस्य काव्यत्वहानेर्ध्वनिर्नास्ति" इति, तदप्ययुक्तम्। यतो लक्षणकृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः, लक्ष्ये तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम्। ततोऽन्यच्चित्रमेवेत्यग्रे दर्शयिष्यामः।

जो यह कहा था कि प्रसिद्ध प्रस्थान मार्ग से अलग मार्ग में काव्यत्व ही नहीं रहेगा, इसलिए ध्वनि नहीं है, यह मत ठीक नहीं है क्योंकि वह मत मात्र लक्षणकारों को ही ज्ञात नहीं है किन्तु लक्ष्य काव्य की परीक्षा करने पर सहृदयों के हृदय को आनन्दित करने वाला काव्य का सार वही ध्वनि है, उसे पृथक् चित्र काव्य के प्रसङ्ग में आगे दिखलाएँगे।

यदप्युक्तम्- "कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तालङ्कारादिप्रकारेष्वन्तर्भावः इति, तदप्यसमीचीनम्। वाच्यवाचकमात्राश्रयिणि प्रस्थाने व्यङ्ग्यव्यञ्जकसमाश्रयेण व्यवस्थितस्य ध्वनेः कथमन्तर्भावः। वाच्यवाचकचारुत्वहेतवो हि तस्याङ्गभूताः, स त्वङ्गिरूप एवेति प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्।

और पूर्व में कथित मत यह कि रमणीयता का अतिक्रमण नहीं करता है उसका उक्त अर्थात् अलङ्कार आदि प्रकारों में अन्तर्भाव हो

जाता है यह असमीचीन है। क्योंकि वाच्य वाचक पर आश्रित प्रस्थान में व्यङ्ग्य व्यञ्जना भाव पर आश्रित ध्वनि का अन्तर्भाव कैसे हो सकता है, वाच्यवाचक के चारुत्व के हेतु तो उसे ध्वनि के अङ्ग रूप हैं और वह तो अङ्गी रूप है, इसका प्रतिपादन करेंगे।

परिकरश्लोकश्चात्र-

व्यङ्ग्यव्यञ्जकसम्बन्धनिबन्धनतया ध्वनेः ।

वाच्यवाचकचारुत्वहेत्वन्तः पातिता कुतः ॥

इसी सन्दर्भ में एक परिकर श्लोक भी है। जिसका अर्थ है- ध्वनि के व्यङ्ग्य-व्यञ्जकभाव सम्बन्धमूलक होने से वाच्यवाचक चारुत्व हेतुओं में अन्तर्भूत कैसे हो सकता है। यदि पूर्व पक्ष कहे कि जहाँ प्रतीयमान अर्थ की स्पष्ट रूप से अप्रतीति होती हो।

ननु यत्र प्रतीयमानस्यार्थस्य वैशद्येनाप्रतीतिः स नाम मा भूद् ध्वनेर्विषयः। यत्र तु प्रतीतिरस्ति, यथा – समासोक्त्याक्षेपानुक्तनिमित्तविशेषोक्तिपर्यायोक्तापह्नुति-दीपकसङ्करालङ्कारादौ, तत्र ध्वनेरन्तर्भावो भविष्यतीत्यादि निराकर्तुमभिहितम् "उपसर्जनीकृतस्वार्थौ" इति।

वह ध्वनि का विषय ना माने, किन्तु जहाँ प्रतीति होती हो जैसे समासोक्ति, आक्षेप, अनुक्तनिमित्त, विशेषोक्ति, पर्यायोक्ति की अपह्नुति, दीपक और संकर आदि अलङ्कारों में, वहाँ ध्वनि का अन्तर्भाव हो जाएगा। इसके निराकरण में कहा है- "उपसर्जनीकृतस्वार्थौ"।

अर्थो गुणीकृतात्मा, गुणीकृताभिधेयः शब्दो वा यत्रार्थान्तरमभिव्यनक्ति स ध्वनिरिति। तेषु कथं तस्यान्तर्भावः। व्यङ्ग्यप्राधान्ये हि ध्वनिः। न चैतत्समासोक्त्यादिष्वस्ति।

जहाँ अर्थ स्वयं को या शब्द स्वयं के अर्थ को गुणीभूत करके अर्थान्तर को अभिव्यक्त करते हैं, उसको ध्वनि कहते हैं। उन समासोक्ति आदि अलङ्कारों में उस ध्वनि का अन्तर्भाव कैसे होगा? व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता में ध्वनि काव्य होता है। समासोक्ति आदि में यह व्यङ्ग्य प्राधान्य नहीं है।

समासोक्तौ तावत्-

उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।

यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद्गलितं न लक्षितम् ॥

समासोक्ति में तो- सायंकालीन रक्तिमा को धारण किये हुए अन्य अर्थ में प्रेमोन्मत्त शशी अर्थात् चन्द्रमा अन्य अर्थ में पुल्लिङ्ग 'शशी' पद से व्यङ्ग्य 'नायक' ने निशा रात, अन्य अर्थ में स्त्रीलिङ्ग 'निशा' शब्द से नायिका के चञ्चल तारों से युक्त नक्षत्र, अन्य अर्थ में नायिका के चञ्चल कनीनिकावाले आनन प्रदोषकाल, अन्यत्र आनन को चुम्बन करने के लिए इस प्रकार ग्रहण किया कि राग सायंकालीन अरुण प्रकाश, अन्य अर्थ में नायक के स्पर्श से उत्पन्न अनुराग की अधिकता के कारण सारा तिमिररूप वस्त्र गिर जाने पर भी उसे और नायिका को दिखलायी नहीं दिया।

इत्यादौ व्यङ्ग्येनानुगतं वाच्यमेव प्राधान्येन प्रतीयते समारोपितनायिकानायकव्यवहारयोर्निशाशशिनोरेव वाक्यार्थत्वात्। आक्षेपेऽपि व्यङ्ग्यविशेषाक्षेपिणोऽपि वाच्यस्यैव चारुत्वं प्राधान्येन वाक्यार्थ आक्षेपोक्तिसामर्थ्यादेव ज्ञायते।

यहाँ समारोपित नायक-नायिका व्यवहार से युक्त चन्द्रमा और रात्रि के ही वाक्यार्थ होने से, व्यङ्ग्य से अनुगत वाच्य ही प्रधानतया प्रतीत होता है अर्थात् व्यङ्ग्य का प्राधान्य न होने से यहाँ ध्वनि नहीं है, अतः ध्वनि का समासोक्ति में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। इस प्रकार आक्षेपालङ्कार में भी व्यङ्ग्य विशेष का आक्षेप कराने वाला होने पर भी वाच्य का ही चारुत्व है। क्योंकि आक्षेप वचन के सामर्थ्य से ही प्रधानतः वाक्यार्थ प्रतीत होता है।

तथाहि तत्र शब्दोपारूढो विशेषाभिधानेच्छया प्रतिषेधरूपो य आक्षेपः स एव व्यङ्ग्यविशेषमाक्षिपन्मुख्यं काव्यशरीरम् । चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यविवक्षा।

क्योंकि वहाँ आक्षेपालङ्कार में विशेष के बोधन की इच्छा से शब्दोपात्त प्रतिषेधरूप जो आक्षेप है, वही व्यङ्ग्य विशेष का आक्षेप कराता हुआ मुख्य काव्य शरीर है। चारुत्व का उत्कर्ष ही प्राधान्य का नियामक है। चारुत्व का उत्कर्षमूलक ही काव्य और व्यङ्ग्य का प्राधान्य विवक्षित होता है।

यथा-

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरस्सरः ।

अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न समागमः ॥

जैसे- सन्ध्या नामक या रूपिणी नायिका अनुराग से युक्त है और दिवस नामक या रूप नायक उसके सामने स्थित ही नहीं "पुरःसरति गच्छति इति पुरःसरः" बढ़ रहा है। ओह ! दैव की गति कैसी विलक्षण है कि फिर भी उनका समागम नहीं हो पाता।

अत्र सत्यामपि व्यङ्ग्यप्रतीतौ वाच्यस्यैव चारुत्वमुत्कर्षवदिति तस्यैव प्राधान्यविवक्षा। यथा च दीपकापह्नुत्यादौ व्यङ्ग्यत्वेनोपमायाः प्रतीतावपि प्राधान्येनाविवक्षितत्वान्न तया व्यपदेशस्तद्वदत्रापि द्रष्टव्यम् ।

यहाँ नायिका व्यवहाररूप व्यङ्ग्य की प्रतीति होने पर भी वाच्य का ही चारुत्व अधिक होने से उसकी ही प्रधानता विवक्षित है और जैसे दीपक तथा अपह्नुति इत्यादि में व्यङ्ग्यरूप से उपमा की प्रतीति होने पर भी उपमाकृत चारुत्वोत्कर्ष न होने से प्राधान्य विवक्षित न होने से उपमा नाम से व्यवहार नहीं होता, इसी प्रकार यहाँ समझना चाहिये।

आचार्य मम्मट दीपक अलङ्कार का लक्षण करते हुए लिखते हैं-

"सकृद् वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।

सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ॥"

अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान रूप वस्तुओं के क्रिया कि रूप धर्म का एक बार ग्रहण किया जाता है या अनेक क्रियाओं के होने पर किसी कारक का एक बार ग्रहण होता है, वह दीपक अलङ्कार है। आचार्य भागह ने 'दीपक' अलङ्कार का उदाहरण किया है-

मणि:शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिदलित:, कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बाललालना।

मदक्षीणो नागः शरदि सरिदश्यानपुलिना, तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवश्चार्थिषु जनाः ॥

उक्त उदाहरण में 'गलितविभव' लोग प्रकृत हैं और मणि, समरविजयी, बालललना, मदक्षीण हाथी आदि अप्रकृत हैं। इन सब 'तनिम्ना शोभन्ते' इस एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने के कारण यहाँ दीपक अलङ्कार है। इसमें प्रकृत एवं अप्रकृत में परस्पर उपमेयोपमानभाव व्यङ्ग्य होता है, अत: उपमा के होने पर भी दीपककृत चारूत्व के कारण दीपक अलङ्कार ही प्रधान है।

अनुक्तनिमित्तायामपि विशेषोक्तौ-

आहूतोऽपि सहायैरोमित्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोऽपि ।

गन्तुमना अपि पथिकः सङ्कोचं नैव शिथिलयति ॥

अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति में भी साथियों द्वारा पुकारे जाने पर भी हाँ कहकर जाग जाने पर भी और जाने की इच्छा होने पर भी पथिक सङ्कोच को नहीं छोड़ रहा है।

इत्यादौ व्यङ्ग्यस्य प्रकरणसामर्थ्यात्प्रतीतिमात्रम् । न तु तत्प्रतीतिनिमित्ता काचिच्चारुत्वनिष्पत्तिरिति न प्राधान्यम्। पर्यायोक्तेऽपि यदि प्राधान्येन व्यङ्ग्यत्वं तद्भवतु नाम तस्य ध्वनावन्तर्भावः। न तु ध्वनेस्तत्रान्तर्भावः ।

इत्यादि उदाहरण में कारणवश व्यङ्ग्य की केवल प्रतीति होती है। किन्तु उस प्रतीति के कारण कोई सौन्दर्य उत्पन्न नहीं होता, इसीलिए उसका प्राधान्य नहीं है। पर्यायोक्ति में जो प्रमुख रूप से व्यङ्ग्यत्व का अन्तर्भाव किया जा सकता है, न कि ध्वनि का उस अलङ्कार में अन्तर्भाव किया जा सकता है।

तस्य महाविषयत्वेनाङ्गित्वेन च प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्। न पुनः पर्यायोक्ते भामहोदाहृतसदृशे व्यङ्ग्यस्यैव प्राधान्यम्। वाच्यस्य तत्रोपसर्जनीभावेनाविवक्षितत्वात्।

क्योंकि ध्वनि तो महाविषय और अङ्गी अर्थात् प्रधानरूप से प्रतिपादित किया जायेगा। परन्तु भामह द्वारा उदाहृत 'गृहेष्वध्वसु' जैसे पर्यायोक्ति के उदाहरण में तो व्यङ्ग्य का प्राधान्य ही नहीं है। क्योंकि वहाँ वाच्य का गौणत्व विवक्षित नहीं है अर्थात् वाच्य ही प्रधान है। अतः उसे

ध्वनि नहीं कहा जा सकता है।

अपह्नुतिदीपकयोः पुनर्वाच्यस्य प्राधान्यं व्यङ्ग्यस्य चानुयायित्वं प्रसिद्धमेव। सङ्करालङ्कारेऽपि यदलङ्कारोऽलङ्कारान्तरच्छायामनुगृह्णाति, तदा व्यङ्ग्यस्य प्राधान्येनाविवक्षितत्वान्न ध्वनिविषयत्वम्।

पुनः अपह्नुति तथा दीपकालङ्कार में वाच्य की प्रधानता और व्यङ्ग्य का अनुयायित्व प्रसिद्ध ही है। सङ्करालङ्कार में भी जहाँ एक अलङ्कार दूसरे की छाया सौन्दर्य को पुष्ट अनुगृहीत करता है अर्थात् अङ्गाङ्गिभाववरूप चतुर्थ भेद में वहाँ व्यङ्ग्य का प्राधान्य विवक्षित न होने से वह ध्वनि का विषय नहीं है।

अलङ्कारद्वयसम्भावनायां तु वाच्यव्यङ्ग्ययोः समं प्राधान्यम्। अथ वाच्योप-सर्जनीभावेन व्यङ्ग्यस्य तत्रावस्थानं तदा सोऽपि ध्वनिविषयोऽस्तु, न तु स एव ध्वनिरिति वक्तुं शक्यम्, पर्यायोक्तनिर्दिष्टन्यायात्। अपि च सङ्करालङ्कारेऽपि च क्वचित् सङ्करोक्तिरेव ध्वनिसम्भावनां निराकरोति।

सन्देह एवं सङ्कररूप प्रथम भेद में दो अलङ्कारों की सम्भावना होने पर तो वाच्य और व्यङ्ग्य दोनों का साम्य प्राधान्य होता है। अतः यहाँ भी ध्वनि की सम्भावना नहीं है और यदि वहाँ अङ्गाङ्गिभाव सङ्करालङ्कार में व्यङ्ग्य एवं वाच्य के उपसर्जनीभाव गौणरूप से स्थित हो तब तो यह भी ध्वनि अलङ्कारध्वनि का विषय हो सकता है, न कि केवल वही ध्वनि है, पर्यायोक्ति निर्दिष्ट न्याय से। और एक बात यह भी है कि सङ्करालङ्कार में सर्वत्र सङ्कर शब्द का प्रयोग ही ध्वनि के सम्भावना का निराकरण कर देता है।

अप्रस्तुतप्रशंसायामपि यदा सामान्यविशेषभावान्निमित्तनिमित्तिभावाद्वा अभिधीयमानस्याप्रस्तुतस्य प्रतीयमानेन प्रस्तुतेनाभिसम्बन्धस्तदाभिधीयमानप्रती-यमानयोः सममेव प्राधान्यम् ।

अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार में भी जब सामान्य विशेषभाव से अथवा निमित्तनिमित्तभाव से, अभिधीयमान अप्रस्तुत का प्रतीयमान प्रस्तुत के साथ सम्बन्ध होता। तब अभिधीयमान और प्रतीयमान दोनों का समान ही प्राधान्य होता है।

यदा तावत्सामान्यस्याप्रस्तुतस्याभिधीयमानस्य प्राकरणिकेन विशेषेण प्रतीयमानेन सम्बन्धस्तदा विशेषप्रतीतौ सत्यामपि प्राधान्येन तत्सामान्येनाविनाभावात्सामान्यस्यापि प्राधान्यम्।

जब कि अभिधीयमान अप्रस्तुत सामान्य का प्रतीयमान प्रस्तुत विशेष से सम्बन्ध होता है। तब प्रधानतः विशेष की प्रतीति होनेपर भी "निर्विशेषं न सामान्यम्" इस नियम के अनुसार उसका सामान्य से अविनाभाव सम्बन्ध होने के कारण सामान्य का भी प्राधान्य होता है।

यदापि विशेषस्य सामान्यनिष्ठत्वं तदापि सामान्यस्य प्राधान्ये सामान्ये सर्वविशेषाणामन्तर्भावाद्विशेषस्यापि प्राधान्यम् । निमित्तनिमित्तिभावे चायमेव न्यायः ।

और जब विशेष सामान्यनिष्ठ होता है अर्थात् जब अभिधीयमान अप्रस्तुत विशेष से प्रतीयमान प्रस्तुत सामान्य का आक्षेप होता है। तब भी सामान्य के प्राधान्य होने पर, सामान्य में ही समस्त विशेषों का अन्तर्भाव होने से विशेष का भी प्राधान्य होता है। निमित्तनिमित्तिभाव में भी यही नियम लागू होता है।

यदा तु सारूप्यमात्रवशेनाप्रस्तुतप्रशंसायामप्रकृतप्रकृतयोः सम्बन्धस्तदाप्यप्रस्तुतस्य सरूपस्याभिधीयमानस्य प्राधान्येनाविवक्षायां ध्वनावेवान्तःपातः। इतरथा त्वलङ्कारान्तरमेव।

जब सादृश्यमात्रमूलक अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रकृत और प्रकृत का सम्बन्ध होता है ; तब भी अभिधीयमान अप्रस्तुत तुल्य पदार्थ का प्राधान्य अविवक्षित होने की दशा में वस्तु ध्वनि में अन्तर्भाव हो जायेगा। अन्यथा प्राधान्य न होने पर ही अलङ्कार होगा।

तदयमत्र सङ्क्षेपः-

व्यङ्ग्यस्य यत्राप्राधान्यं वाच्यमात्रानुयायिनः ।

समासोक्त्याद्यस्तत्र वाच्यालङ्कृतयः स्फुटाः ॥

इस सबका सारांश यह है कि- जहाँ वाच्य अनुगमन करने वाला होने से व्यङ्ग्य का अप्राधान्य है, यहाँ समासोक्ति आदि वाच्य अलङ्कार स्पष्ट हैं।

व्यङ्ग्यस्य प्रतिभामात्रे वाच्यार्थानुगमेऽपि वा ।

न ध्वनिर्यत्र वा तस्य प्राधान्यं न प्रतीयते ॥

जहाँ व्यङ्ग्य की केवल प्रतीतिमात्र होती है अथवा यह वाच्य अनुगामी है अथवा जहाँ उसका स्पष्ट प्राधान्य नहीं है, वहाँ भी ध्वनि नहीं है।

तत्परावेव शब्दार्थौ यत्र व्यङ्ग्यं प्रति स्थितौ ।

ध्वनेः स एव विषयो मन्तव्यः सङ्करोज्झितः ॥

तस्मान्न ध्वनेरन्यत्रान्तर्भावः ।

जहाँ शब्द और अर्थ व्यङ्ग्यबोधन के लिए ही तत्पर हैं, उसी को सङ्कर रहित ध्वनिका विषय समझना चाहिये। इसलिए ध्वनिका अन्यत्र अलङ्कारादि में अन्तर्भाव नहीं हो सकता।

इतश्च नान्तर्भावः; यतः काव्यविशेषोऽङ्गी ध्वनिरिति कथितः। तस्य पुनरङ्गानि अलङ्कारा गुणा वृत्तयश्चेति प्रतिपादयिष्यन्ते। न चावयव एव पृथग्भूतोऽवयवीति प्रसिद्धः। अपृथग्भावे तु तदङ्गत्वं तस्य। न तु तत्त्वमेव।

इस कारण भी ध्वनि का अन्यत्र अलङ्कारादि में अन्तर्भाव नहीं हो सकता कि अङ्गीभूत व्यङ्ग्यप्रधान काव्यविशेष को ध्वनि कहा है। अलङ्कार, गुण और वृत्तियाँ उसके अङ्ग हैं। यह आगे प्रतिपादित किया जायगा और अलग-अलग अवयव ही अवयवी नहीं कहे जाते। अपृथग्भूत मिलकर समुदाय रूप में भी वह अवयवरूप अलङ्कारादि उस ध्वनि के अङ्ग ही हैं, न कि अङ्गी हैं।

यत्रापि तत्त्वं तत्रापि ध्वनेर्महाविषयत्वान्न तन्निष्ठत्वमेव। "सूरिभिः कथितः" इति विद्वदुपज्ञेयमुक्तिः, न तु यथाकथञ्चित्प्रवृत्तेति प्रतिपाद्यते। प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः, व्याकरणमूलत्वात्सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति।

जहाँ कहीं जैसे पर्यायोक्ति के "भ्रम धार्मिक" सदृश उदाहरणों में, अथवा सङ्कर के- "भवति न गुणानुरागः" सदृश उदाहरणों में व्यङ्ग्य का अङ्गीत्व या ध्वनित्व होता भी है, यहाँ भी ध्वनि के महाविषय अधिक देशवृत्ति अर्थात् उन उदाहरणों से भिन्न स्थलों पर भी विद्यमान होने से ध्वनि अलङ्कारादि में अन्तर्भूत नहीं होता। ध्वनिसिद्धान्त का आदि मूल 'सुरिभिः कथितः' कारिका संख्या १३ के से यह ध्वनि प्रतिपादनपरक उक्ति ध्वनिवाद विद्वन्मतमूलक है, यों ही अप्रामाणिक स्वकल्पित रूप से प्रचलित नहीं हो गयी है। यह बताया गया है। प्रथम मुख्य विद्वान् वैयाकरण हैं, क्योंकि व्याकरण सर्वविद्या का मूल है। वैयाकरण सुनाई देनेवाले वर्णो को ध्वनि कहते हैं।

तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्त्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः।

उसी प्रकार उनके मत को माननेवाले काव्य तत्त्वार्थदर्शी अन्य विद्वानों ने भी वाच्य, वाचक (सम्मिश्र्यते विभावानुभावसंवलनयेति सम्मिश्रः व्यङ्ग्यार्थः), व्यङ्ग्यार्थ, (शब्दनं शब्दः तदात्मा व्यञ्जनरूपः शब्दव्यापारः) व्यञ्जना व्यापार एवं काव्य पद से व्यवहार्य काव्य इन पाँचों को ध्वनि कहा है।

न चैवंविधस्य ध्वनेर्वक्ष्यमाणप्रभेदतद्भेदसङ्कलनया महाविषयस्य यत्प्रकाशनं तदप्रसिद्धालङ्कारविशेषमात्रप्रतिपादने न तुल्यमिति तद्भावितचेतसां युक्त एव संरम्भः। न च तेषु कथञ्चिदीर्ष्यकलुषितशेमुषीकत्वमाविष्करणीयम्। तदेवं ध्वनेस्तावदभाववादिनः प्रत्युक्ताः। अस्ति ध्वनिः।

'ध्वनतीति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से वाचक शब्द और वाच्यार्थ को, 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से व्यङ्ग्यार्थ को, ध्वननं ध्वनिः इस व्युत्पत्ति से व्यञ्जना व्यापार को और 'ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से पूर्व में कहे गये ध्वनि चतुष्टय युक्त काव्य को ध्वनि कहते हैं। यह लोचनकार के मतानुसार है । इस प्रकार के और आगे कहे जानेवाले भेद-प्रभेदके सङ्कलन से अत्यन्त व्यापक ध्वनि का जो प्रतिपादन है, वह केवल अप्रसिद्ध अलङ्कार विशेषों के प्रतिपादन के समान नगण्य नहीं है, इसलिए उसके समर्थकों का उत्साहातिरेक उचित ही है। उनके प्रति किसी प्रकार की ईर्ष्याकलुषित वृत्ति नहीं दिखानी चाहिए। इस प्रकार ध्वनि के अभाववादियों के द्वारा कहे हुए 'तदलङ्कारादिव्यतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिर्नामेति' से 'तत्समयान्तःपातिनः सहृदयान् कांश्चित्परिकल्प्य तत्प्रसिद्ध्या ध्वनौ काव्यव्यपदेशः प्रवर्तितोऽपि सकलविद्वन्मनो-

ग्राहितामवलम्बते' इत्यादि और 'तेषामन्यतमस्यैव वाऽपूर्वसमाख्यामात्रकरणे यत्किञ्चन कथनं स्यात्' इत्यादि अभाववादी तीनों पूर्वपक्षियों का निराकरण हो गया। इसलिए ध्वनि है।

स चा और अविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन।

यह सामान्यतः अविवक्षितवाच्य लक्षणामूल और विवक्षितान्यपरवाच्य अभिधामूल भेद से दो प्रकारका होता है।

तत्राद्यस्योदाहरणम्-

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।

शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥

उनमें प्रथम अविवक्षितवाच्य, लक्षणामूल ध्वनि का उदाहरण यह है- सुवर्ण जिसका पुष्प है ऐसी पृथिवी का चयन अर्थात् पृथिवीरूप लता के सुवर्णरूप पुष्पों का चयन तीन ही पुरुष करते हैं- शूर, विद्वान् और जो सेवा करना जानता है।

वस्तुत: पृथ्वी न तो कला है, न सुवर्ण पुष्प है और न ही उनका चयन किया जा सकता है, अत: मुख्यार्थबाधित होने पर लक्षण द्वारा प्रभूत धन एवं समृद्धिशाली जनता यह अर्थ व्यक्त होता है। लक्षणा का प्रयोग शूर, विद्वान् एवं सेवकों का प्राशस्त्य स्वशब्दवाच्य न होकर कामिनी कुचकल**शवत्** ध्वनित होता है, अत: लक्षणामूला होने से अविवक्षितवाच्यध्वनि कहा जाता है।

द्वितीयस्यापि -

शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः।

तरुणि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः॥

अन्य आचार्य विवक्षितान्यपरवाच्य, अभिधामूलध्वनि का भी उदाहरण देते हैं- हे तरुणि ! इस शुक शावक ने किस पर्वत पर, कितने दिनों तक, कौन-सा तप किया है, जिसके कारण तुम्हारे अधर के समान रक्तवर्ण बिम्बफल को काटने का सौभाग्य-पुण्यातिशयलभ्य सौभाग्य - प्राप्त कर रहा है।

7.2.2 कारिका 14 की व्याख्या -

यदप्युक्तं भक्तिर्ध्वनिरिति, तत्प्रतिसमाधीयते।

भक्त्या बिभर्ति नैकत्वं रूपभेदादयं ध्वनिः।

यदप्युक्तं भक्तिर्ध्वनिरिति, तत्प्रतिसमाधीयते भक्त्या बिभर्ति नैकत्वम् रूपभेदादयं ध्वनिः। अयमुक्तप्रकारो ध्वनिर्भक्त्या नैकत्वं बिभर्ति भिन्नरूपत्वात्। वाच्यव्यतिरिक्तस्यार्थस्य वाच्यवाचकाभ्यां तात्पर्येण प्रकाशनं यत्र व्यङ्ग्यप्राधान्ये स ध्वनिः। उपचारमात्रं तु भक्तिः।

जो भी भक्ति ध्वनि है, यह कहा है, उसका समाधान करते हैं। यह उक्त प्रकार वाली ध्वनि भिन्नरूप होने के कारण भक्ति से एकत्व अर्थात् अभेद प्राप्त नहीं करता। वाच्य से व्यतिरिक्त अर्थ का वाच्य और वाचक द्वारा तात्पर्य रूप से प्रकाशन जहाँ व्यङ्ग्य की प्रधानता में हो, वह ध्वनि है। भक्ति तो उपचारमात्र है।

मा चैतत्स्याद्भक्तिर्लक्षणं ध्वनेरित्याह।

अतिव्याप्तेरथाव्याप्तेर्न चासौ लक्ष्यते तया॥ 14॥

भक्ति ध्वनि का लक्षण है, यह भी नहीं हो सकता। अतः यह कहते हैं- अतिव्याप्ति और अव्याप्ति के कारण ध्वनि भक्ति से लक्षित भी नहीं हो सकता है।

नैव भक्तया ध्वनिर्लक्ष्यते। कथम्? अतिव्याप्तेरव्याप्तेश्च तत्रातिव्याप्तिर्ध्वनिव्यतिरिक्तेऽपि विषये भक्तेः सम्भवात्। यत्र हि व्यङ्ग्यकृतं महत्सौष्ठवं नास्ति तत्राप्युचरितशब्दवृत्त्या प्रसिद्ध्यनुरोधप्रवर्तितव्यवहाराः कवयो दृश्यन्ते।

भक्ति ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकता है, क्यों? अव्याप्ति और अतिव्याप्ति के कारण। उसमें अतिव्याप्ति इसलिए है कि ध्वनि से भिन्न

विषय में भी भक्ति (लक्षणा) हो सकती है। जहाँ व्यङ्ग्य के कारण विशेष सौन्दर्य नहीं होता, वहाँ भी कविप्रसिद्धिवश, उपचार या गौणी शब्दवृत्ति से व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं।

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-

स्तनोर्मध्यस्यान्त: परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनै:,

कृशाङ्ग्या: सन्तापं वदति विसिनीपत्रशयनम्।।

भक्ति से ध्वनि नहीं लक्षित होती हैं। तो प्रश्न उठता है कि क्यों? क्योंकि यदि भक्ति को ध्वनि का लक्षण मान लिया जाए तो अतिव्याप्ति और अव्याप्ति नामक दोष उत्पन्न हो जाएगा। अतिव्याप्ति दोष इसलिए होगा क्योंकि ध्वनि के अनुपस्थिति में भी भक्ति उपस्थित रहता है। जहाँ पर व्यङ्ग्य कृत अर्थात् ध्वनि जन्य महत्सौष्ठव नहीं होता है। वहाँ पर कवि प्रसिद्धि के कारण लाक्षणिक शब्दों का व्यवहार करते हैं। ध्वनि व्यतिरिक्त स्थानों पर औपचारिक प्रयोग का उदाहरण - रत्नावली नाटिका की नायिका सागरिका के मदनशय्या का वर्णन है- कमलिनी के पत्रों से बनी शय्या स्तनों तथा जंघाओं के संयोग से दोनों ओर के पत्र मलिन अर्थात् मुर्झा गये हैं, दोनों स्तनों के मध्य के भाग का स्पर्श न होने के कारण मध्य का भाग हरा है। इस प्रकार यह शय्या शिथिल भुजलाताओं के आक्षेप से अस्त-व्यस्त हो गयी है, जो कृशाङ्गी के सन्ताप को व्यक्त कर रही है।

उक्त पद्य में 'वदति' का लक्षणाजन्य अर्थ 'प्रकटयति' है। यहाँ 'लक्षणा' से कहने के स्थान पर अभिधा से ही कह दिया जाता तो अर्थ के चारुत्व में कोई हानि नहीं होती और लक्षणा द्वारा कह देने से उसमें कोई विशेष चारुत्व नहीं उत्पन्न हुआ, अत: यहाँ व्यङ्ग्य प्राधान्यरूप ध्वनि के न होने पर भी 'वदति' पद में लक्षणारुप भक्ति का आश्रय लिया गया है अत: ध्वनि से भिन्न स्थान पर भक्ति के अतिव्याप्त होने से वह ध्वनिलक्षण का विषय नहीं हो सकती।

दान का अर्थ असङ्गत होने से लक्षणा से 'प्रतिफलित' अर्थ को बोध कराता है।

तथा –

चुम्ब्यते शतकृत्वोऽवरुध्यते सहस्रकृत्त्व:

विरम्य पुना रम्यते प्रियो जनो नास्ति पुनरुक्तम्।।

उसी प्रकार प्रियजन का सैकड़ों बार चुम्बन करते हैं, हजारों बार आलिङ्गन करते हैं और रुक-रुक कर पुन: रमण करते हैं, फिर भी यह पुनरुक्त नहीं है। इस स्थल पर पुनरुक्त है नहीं, इसलिए इस पद से अरुचिकरता लक्षित होती है, अत: यहाँ पर भी व्यङ्ग्य प्राधान्यरूप ध्वनि न होने पर भी 'पुनरुक्त' पद से लक्षणा से अरुचिकरता अर्थ लक्षित होने से अति व्याप्ति के कारण भक्ति; ध्वनि नहीं हो सकती।

तथा -

कुपिता: प्रसन्ना अवरुदितवदना विहसन्त्य: ।

यथा गृहीतास्तथा हृदयं हरन्ति स्वैरिण्यो महिला:।।

जैसे ही- स्वैरिणी नारियाँ कुपित होती हुई, प्रसन्न होती हुई, रोती हुई, हँसती हुई मुख वाली अर्थात् जिस भी रूप में उन्हें देखा जाए वह पुरुष के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। यहाँ ध्वनि न होने पर भी लाक्षणिक प्रयोग के कारण भक्ति की अतिव्याप्ति है। अत: भक्ति ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकती।

तथा-

आर्याया: प्रहारो नवलतया दत्त: प्रियेण स्तनपृष्ठे।

मृदुकोऽपि दुस्सह इव जातो हृदये सपत्नीनाम् ।।

उसी प्रकार - प्रियतम के द्वारा भार्या के स्तन-पृष्ठों पर कोमल लता से किये गये प्रहार में मृदुलता होते हुए भी सपत्नियों के हृदय द्वारा दु:सह हो गया। यहाँ ध्वनि का कोई अवसर न होने पर भी भक्ति का प्रयोग होने से अतिव्याप्ति दोष है। 'दान' का अर्थ असङ्गत होने से लक्षणा

द्वारा 'प्रतिफलित' अर्थ बोधित होता है। अत: भक्ति ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकती।

तथा-

परार्थे य: पीडामनुभवति भङ्गेऽपि मधुरो

यदीय: सर्वेषामिह खलुविकारोऽप्यभिमत:।

न सम्प्राप्तो वृद्धिं यदि स भृशमक्षेत्रपतित:

किमिक्षोर्दोषोऽसौ न पुनरगुणाया मरुभुव:॥

इत्यत्रेक्षुपक्षेऽनुभवति शब्द:।

न चैवंविध: कदाचिदपि ध्वनेर्विषय: ॥4॥

वैसे ही दूसरों के लिए जो पीड़ा का अनुभव करता है, भङ्ग हो जाने पर भी तो मधुर रहता है, जिसका विकार भी सभी के अनुकूल रहता है तथा अनुचित क्षेत्र में गिर जाने के कारण वृद्धि को प्राप्त नहीं करता, इसमें ईख का ही दोष है क्या इसमें उसे गुण से रहित मरुभूमि का दोष नहीं है। इस प्रकार यहाँ पर ईख के पक्ष में 'अनुभवति' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिससे कि मुख्यार्थ का बाध हो जा रहा है। इस प्रकार यह कभी भी ध्वनि का विषय नहीं हो सकता।

7.2.3 कारिका 15 की व्याख्या -

यतः

उक्त्यन्तरेणाशक्यं यत्तच्चारुत्वं प्रकाशयन् ।

शब्दो व्यञ्जकतां बिभ्रद् ध्वन्युक्तेर्विषयी भवेत् ॥ 15 ॥

क्योंकि जहाँ से ऐसी उक्ति के परिवर्तन से जो चारुत्व (उक्त्यन्तर) से प्रकाशित नहीं हो सकता है, उसे परिपुष्ट करने के लिए व्यञ्जनाव्यापार युक्त शब्द ही ध्वनि इस युक्ति के विषय के ही योग्य हो सकता है अर्थात् ध्वनि कहलाने का अधिकारी हो सकता है। इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन ने भक्ति को ध्वनि का लक्षण मानने वाले दूसरे विकल्प लक्षणावाद का खण्डन कर ध्वनि को भक्ति से पृथक् रूप में प्रतिपादित किया।

7.2.4 कारिका 16 की व्याख्या -

अत्र चोदाहृते विषये नोक्त्यन्तराशक्यचारुत्वव्यक्तिहेतुः शब्दः ।

किञ्च-

रुढा ये विषयेऽन्यत्र शब्दाः स्वविषयादपि ।

लावण्याद्याः प्रयुक्तास्ते न भवन्ति पदं ध्वनेः ॥ 16 ॥

तेषु चोपचरितशब्दवृत्तिरस्तीति। तथाविधे च विषये क्वचित्सम्भवन्नपि ध्वनिव्यवहारः प्रकारान्तरेण प्रवर्तते। न तथाविधशब्दमुखेन।

यहाँ उदाहृत विषय में शब्द दूसरी शक्ति से अशक्य चारुत्व की व्यञ्जना का हेतु नहीं है। क्योंकि और (भी) - जो लावण्य आदि शब्द अपने विषय से इतर सौन्दर्यादि अर्थ में प्रसिद्ध हैं, वे भी प्रयुक्त होने पर ध्वनि के विषय नहीं होते हैं और उनमें उपचरित शब्द वृत्ति है तथा उस प्रकार विषय में कहीं पर भी सम्भव होता हुआ भी ध्वनि का व्यवहार प्रकारान्तर से प्रवर्तित होता है। उस प्रकार के शब्दों के द्वारा नहीं। कहने का आशय यह है कि लक्षणा में रूढि अथवा प्रयोजन; दो में से किसी एक का होना अनिवार्य है। अत: रुढ लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा दो भेद हो जाते हैं। रूढि में तो लक्षणा होती है, परन्तु प्रयोजन का अभाव होता है। प्रयोजनवती लक्षणा में प्रयोजन व्यङ्ग्य तो होता है, किन्तु वह व्यञ्जना से बोधित होता है, लक्षणा से नहीं। इसलिए भक्ति ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकती।

7.2.5 कारिका 17 की व्याख्या -

अपि च-

मुख्यां वृत्तिं परित्यज्य गुणवृत्त्याऽर्थदर्शनम् ।

यदुद्दिश्य फलं तत्र शब्दो नैव स्खलद्गतिः ॥ 17 ॥

तत्र हि चारुत्वातिशयविशिष्टार्थप्रकाशनलक्षणे प्रयोजने कर्त्तव्ये यदि शब्दस्यामुख्यता तदा तस्य प्रयोगे दुष्टतैव स्यात्। न चैवम्

और भी जिस शैत्यपावनत्वादि फल को लक्ष्य में रखकर 'गङ्गायां घोषः' इत्यादि वाक्यों में अभिधा वृत्ति को छोड़कर लक्षणा द्वारा अर्थबोध कराया जाता है, उस फल का बोध कराने में वह शब्द बाधित अर्थ नहीं है। उस चारूत्वातिशयविशिष्ट अर्थ के प्रकाशनरूप प्रयोजक सम्पादन में यदि शब्द बाधित अर्थ हो तब उस शब्द के प्रयोग में दोष होगा ; परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि वहाँ पर चारुत्व के अतिशय से विशिष्ट अर्थ का प्रकाशन रूप प्रयोजन के कर्त्तव्य होने पर भी यदि शब्द की प्रधानता नहीं रह गई तो उसके प्रयोग में दोषयुक्तता अवश्य रहेगी; किन्तु ऐसा नहीं है। 'गङ्गायां घोष:' इत्यादि स्थलों में शैत्यपावनत्वादिरुप प्रयोजन के लिए मुख्य वृति अभिधा को छोड़कर गुणवृत्ति लक्षणा से अर्थ का प्रतिपादन किया जाता है। वह प्रयोजन लक्षणा से नहीं, अपितु व्यञ्जना से बोधित होता है। अत: लक्षणा एवं व्यञ्जना दोनों में विषयभेद है। विषयभेद होने से उन दोनों में धर्मधर्मिभाव सम्बन्ध नहीं हो सकता। ध्वनि और भक्ति में धर्मधर्मिभाव न होने से भक्ति ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकती। वाचक शब्द से लक्षणा; बोधित मुख्यार्थ का बाध होने पर ही लक्षणा अपना काम करती है। अत: लक्षणा वाचकाश्रिता है, अभिधापुच्छभूता है, अत: विषयभेद होने से व्यञ्जनाश्रित ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकती।

7.2.6 कारिका 18 की व्याख्या –

तस्मात् –

वाचकत्वाश्रयेणैव गुणवृत्तिर्व्यवस्थिता ।

व्यञ्जकत्वैकमूलस्य ध्वनेः स्याल्लक्षणं कथम् ॥ 18 ॥

वाचक के द्वारा प्रयुक्त होनेवाली गुणवृत्ति भक्ति केवल व्यञ्जनामूलक ध्वनि का लक्षण कैसे हो सकती है। अतः व्यञ्जनामूलक ध्वनि लक्षणा कैसे हो सकती हैं?

तस्मादन्यो ध्वनिरन्या च गुणवृत्तिः। अव्याप्तिरप्यस्य लक्षणस्य। न हि ध्वनिप्रभेदो विवक्षितान्यपरवाच्यलक्षणः, अन्ये च बहवः प्रकारा भक्त्या व्याप्यन्तः; तस्माद्भक्तिरलक्षणम् ।

इसलिए ध्वनि अलग है, गुणवृत्ति (लक्षणा) अलग। इस लक्षण में अव्याप्ति दोष है। क्योंकि अभिधामूला ध्वनि और ध्वनि के अन्य या उसके प्रकारों में भक्ति या लक्षणा नहीं रहती है, इसीलिए भक्ति को ध्वनि का लक्षण मानना समीचीन नहीं है।

7.2.7 कारिका 19 की व्याख्या -

कस्यचिद् ध्वनिभेदस्य सा तु स्यादुपलक्षणम् ।

सा पुनर्भक्तिर्वक्ष्यमाणप्रभेदमध्यादन्यतमस्य भेदस्य यदि नामोपलक्षणतया सम्भाव्येत। यदि च गुणवृत्त्यैव ध्वनिर्लक्ष्यत इत्युच्यते तदभिधाव्यापारेण तदितरोऽलङ्कारवर्गः समग्र एव लक्ष्यत इति प्रत्येकमलङ्काराणां लक्षणकरणवैयर्थ्यप्रसङ्गः। किं च

वह ध्वनि के किसी भेद का उपलक्षण हो सकती है। वह ध्वनि पुनः भक्ति कही जानेवाली के प्रभेदों के मध्य में अन्यतम भेद के नाम से यदि उसका नाम अथवा यदि उसका लक्षण की सम्भावना है ; यदि ऐसा है तो भी ध्वनि लक्ष्य करके कहा गया है। उस अभिधाव्यापार के द्वारा उसके इतर अलङ्कार वर्ग समग्र रूप से लक्षित होता है तो प्रत्येक अलङ्कारों के लक्षण का व्यर्थ ही प्रसङ्ग है, क्योंकि कहा गया है-

लक्षणेऽन्यैः कृते चास्य पक्षसंसिद्धिरेव नः॥ 19 ॥

कृतेऽपि वा पूर्वमेवान्यैर्ध्वनिलक्षणे पक्षसंसिद्धिरेव नः ; यस्माद्ध्वनिरस्तीति नः पक्षः । स च प्रागेव संसिद्ध इत्ययत्नसम्पन्नसमीहितार्थाः संवृत्ताः स्मः । येऽपि सहृदयहृदयसंवेद्यमनाख्येयमेव ध्वनेरात्मानमाम्नासिषुस्तेऽपि न परीक्ष्यवादिनः । यत उक्तया नीत्या वक्ष्यमाणया च ध्वनेः सामान्यविशेषलक्षणे प्रतिपादितेऽपि यद्यनाख्येयत्वं तत्सर्वेषामेव वस्तूनां तत्प्रसक्तम् । यदि पुनर्ध्वनेरतिशयोक्त्यानया काव्यान्तरातिशायि तैः स्वरूपमाख्यायते तत्तेऽपि युक्ताभिधायिन एव ।

अर्थात् यदि लोगों ने ध्वनि का लक्षण कर दिया है तो यह हमारे पक्ष की ही सिद्धि है। कारिकांश का भाव वृत्ति में स्पष्ट करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं कि ध्वनि का लक्षण कर दिए जाने से हमारा ही पक्ष सिद्ध होता है, क्योंकि 'ध्वनि है' यही हमारा पक्ष है । अथवा यदि पूर्व में ही किये जाने पर भी अन्य लोगों के द्वारा ध्वनि के लक्षण में हमारे पक्ष की संसिद्धि ही है क्योंकि ध्वनि है; यही तो हमारा पक्ष है और वह पहले से ही संसिद्ध है । विना यत्न के ही अभीष्ट अर्थ को प्राप्त किया गया है । अलक्षणीयतावाद का खण्डन करते हुए आचार्य कहते हैं कि जो भी सहृदय

के हृदय के संवेद्य होने पर यहीं ध्वनि के आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है, जो इसको परीक्षा से जानना चाहते हैं। इस उक्ति को ग्रहण करने पर अथवा कहने पर ध्वनि के सामान्य एवं विशेष लक्षण का प्रतिपादन किया गया। और यदि उसकी आख्या अभी तक नहीं की गई है तो वह सब कुछ ही वस्तुओं में प्रसक्त है। यदि फिर ध्वनि की इस अतिशय उक्ति के द्वारा काव्यान्तर में अतिशयित किया गया है। ऐसा स्वरूप आख्यायित किया गया है और उसके आख्यायित होने पर उसका (ध्वनि ऐसा) नामकरण युक्तियुक्त ही है।

इति श्रीराजानकानन्दवर्धनाचार्यविरचिते ध्वन्यालोके प्रथम उद्योतः ॥

इस प्रकार श्रीराजानक आनन्दवर्धनाचार्य विरचित ध्वन्यालोक का प्रथम उद्योत समाप्त हुआ।

7.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रथम विद्वान् कौन हैं -

(क) मीमांसक (ख) नैयायिक (ग) वैयाकरण (घ) वैशेषिक

2. गङ्गायां घोषः में शैत्यपावनत्वादि क्या है -

(क) फल (ख) वाच्यार्थ (ग) सङ्केतार्थ (घ) व्यङ्ग्यार्थ

3. आनन्दवर्धन के मत में ध्वनि है-

(क) विपक्ष (ख) पक्षसंसिद्धि (ग) विपक्षसंसिद्धि (घ) प्रतीयमानार्थ

4. जहाँ अर्थ स्वयं को अभिव्यक्त न करके अर्थान्तर को अभिव्यक्त करते हैं, वह है -

(क) अभिधा (ख) लक्षणा (ग) व्यञ्जना (घ) ध्वनि

5. व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ....सूरिभिर्कथितः-

(क) ध्वनिरिति (ख) लक्षणेति (ग) अभिधेति (घ) व्यञ्जनेति

6. वैयाकरणों के मत में सुनाई देने वाले वर्ण हैं -

(क) अभिधा (ख) लक्षणा (ग) व्यञ्जना (घ) ध्वनि

7. आनन्दर्धन को कहा जाता है-

(क) राजा (ख) राजन् (ग) राजानक (घ) कमलाकर

8. भक्ति को ध्वनि का लक्षण माना जा सकता है-

(क) हाँ (ख) नहीं (ग) शायद (घ) कभी कभी

9. उपचारमात्रं तु -

(क) भक्तिः (ख) अभिधा (ग) लक्षणा (घ) व्यञ्जना

10. अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न ....

(क) दुरागमः (ख) समागमः (ग) सुखागमः (घ) बलागमः

7.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कारिका 13 की व्याख्या कीजिए।
2. कारिका 16 की व्याख्या कीजिए।

3. कारिका 18 की व्याख्या कीजिए।

4. कारिका 19 की व्याख्या कीजिए।

5. कारिका 14 की व्याख्या कीजिए।

7.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2. अलङ्कारों में ध्वनि के अन्तर्भाव को व्याख्यात कीजिए।

3. 'व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः' इसकी व्याख्या कीजिए।

4. लक्षणा ध्वनि नहीं हो सकती है; इसके पक्ष-विपक्ष में दी गयी युक्तियों का वर्णन कीजिए।

5. 'ध्वनि है, यहीं हमारा पक्ष है' इसकी व्याख्या कीजिए।

इकाई 8 – कारिका 01 से 05 तक की व्याख्या (चतुर्थ उद्योत)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 कारिका व्याख्या

8.2.1 कारिका 01 की व्याख्या

8.2.2 कारिका 02 की व्याख्या

8.2.3 कारिका 03 की व्याख्या

8.2.4 कारिका 04 की व्याख्या

8.2.5कारिका 05 की व्याख्या

8.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

8.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

8.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत के मङ्गलाचरण की व्याख्या का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत की 01 से लेकर 05 कारिकाओं तक की व्याख्या का अभिज्ञान कर सकेंगे।
- ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत की कारिका 01 से 05 तक के मध्य के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की पहचान कर सकेंगे।
- ध्वनि के लक्षण, भेद आदि का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वनि के सम्बन्ध में विविध मतों की समीक्षा कर सकेंगे।
- काव्यों में ध्वनि तत्त्व की पहचान कर सकेंगे।
- स्वकाव्य रचना में ध्वनि तत्त्व का निर्माण करने में समर्थ होंगे।

8.1 प्रस्तावना

ध्वन्यालोक की इस इकाई में चतुर्थ उद्योत की कारिका 01 से लेकर कारिका 05 तक की व्याख्या की जाएगी। स्थान-स्थान पर वर्णन क्रम में ध्वन्यालोक की वृत्ति की भी व्याख्या की जाएगी और यथास्थान अभिनवगुप्तविरचित लोचन टीका का भी वर्णन किया जाएगा।

8.2 कारिका व्याख्या

8.2.1 कारिका 01 की व्याख्या -

आचार्य आनन्दवर्धन ने प्रथम उद्योत में ध्वनि निरूपण का प्रयोजन बताया था - "सहृदयमन: प्रीतये " अर्थात् सहृदयों के मन को प्रसन्न

करने के लिए ध्वनि के विषय में वे समस्त विरोधों का समाधान करने के लिए तृतीय उद्योत तक ध्वनि के अर्थ का निरूपण कर इस ध्वनि प्रपञ्च का एक और प्रयोजन बताते हैं - कवि प्रतिभा का आनन्त्य , जिसे आचार्य व्याख्यात करते हुए कहते हैं -

एवं ध्वनिं सप्रपञ्चं विप्रतिपत्तिनिरासार्थं व्युत्पाद्य तद्व्युत्पादने प्रयोजनान्तरमुच्यते-

इस प्रकार ध्वनि का प्रपञ्च के साथ विप्रतिपत्ति का निराकरण करने के उपरान्त ध्वनि के व्युत्पादन का अन्य प्रयोजन कहते हैं-

ध्वनेर्यः सगुणीभूतव्यङ्ग्यस्याध्वा प्रदर्शितः।

अनेनानन्त्यमायाति कवीनां प्रतिभागुणः ॥ 1 ॥

गुणीभूतव्यङ्ग्य के साथ ध्वनि का जो मार्ग प्रदर्शित किया गया है। इससे कवियों का प्रतिभागुण अनन्तत्व को प्राप्त होता है अर्थात् कवियों के प्रतिभागुण का आनन्त्य ही ध्वनि व्युत्पादन का द्वितीय प्रयोजन है। गुणीभूतव्यङ्ग्य के साथ जो ध्वनि का मार्ग दिखाया गया है, उसके द्वारा कवियों का प्रतिभा नामक गुण आनन्त्य अर्थात् नये कलेवर को प्राप्त करता है। कहने का भाव यह है कि अभी तक जो ध्वनि प्रपञ्च का विश्लेषण किया गया है , उससे कवियों की प्रतिभा का वैशिष्ट्य अनन्तरूपता को प्राप्त करता है।

8.2.2 कारिका 02 की व्याख्या -

कथमिति चेत्

अतो ह्यन्यतमेनापि प्रकारेण विभूषिता ।

वाणी नवत्वमायाति पूर्वार्थान्वयवत्यपि ॥ 2 ॥

वह कैसे ? तो कहा है कि –

इनमें से एक भी प्रकार से सुशोभित वाणी प्राचीन अर्थ के साथ अपने सम्बन्ध रखते हुए भी नवीनता को प्राप्त कर लेती है। इसलिए इनमें से अन्यतम प्रकार से भी ध्वनि या गुणीभूत व्यङ्ग्य इनमें से किसी एक के द्वारा भी विभूषित कवि की वाणी पूर्व अर्थों को अन्वित करते हुए भी नवीनता को प्राप्त कर लेती है। तात्पर्य यह है कि कवि की एक विशेष प्रकार की प्रज्ञा किसी भी वस्तु को उसके अनन्त रूपों में देख लेती है। यही प्रज्ञा प्रतिभा कहलाती है- **"नवनवोन्मेषा शालिनी प्रज्ञा प्रतिभा मता ।" प्रतिभा की इस अनन्तता का यही प्रयोजन है कि कवि की वाणी में नवीनता आ जाय और एक ही विषय नये-नये रूपों में ज्ञात होने लगें ।**

अतो ध्वनेरुक्तप्रभेदमध्यादन्यतमेनापि प्रकारेण विभूषिता सती वाणी पुरातनकविनिबद्धार्थसंस्पर्शवत्यपि नवत्वमायाति । तथाह्यविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेः प्रकारद्वयसमाश्रयणेन नवत्वं पूर्वार्थानुगमेऽपि ।

इस ध्वनि के उक्त प्रभेदों के मध्य एक भी प्रकार से विभूषित होती हुई वाणी प्राचीन कवियों के द्वारा निबद्ध अर्थ का स्पर्श करती हुई नवत्व को प्राप्त करती है। जैसा कि अविवक्षितवाच्यध्वनि के दो प्रकारों के सम्मेलन से प्राचीन अर्थ का अनुगम होने पर भी नवीनता आ ही जाती है। जैसे कि -

यथा –

स्मितं किञ्चिन्मुग्धं तरलमधुरो दृष्टिविभवः

परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोर्मिसरसः।

गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिमलः

स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव हि न रम्यं मृगदृशः॥

कुछ स्मित बन जाता है, आँखों का ऐश्वर्य तरल एवं मधुर हो जाता हैं, बातों का लगातार चल पड़ना, नये हाव-भाव की तरङ्गों से रसीला बन जाता है। गमन-व्यापार के आरम्भ से किसलय वाली लीला का परिमल बन जाता है। इस प्रकार की तारुण्य (युवावस्था) को स्पर्श करती हुई हिरण जैसी आँखों वाली का क्या नहीं रमणीय लगता है।

इत्यस्य

सविभ्रमस्मितोद्भेदा लोलाक्ष्यः प्रस्खलद्गिरः।

नितम्बालसगामिन्यः कामिन्यः कस्य न प्रियाः॥

इसका - विभ्रम (विलास) के साथ स्मित के उद्भेदवाली, चञ्चल नेत्रों वाली, कँपकपाती वाणी वाली, नितम्ब के भार से अलसा कर चलनेवाली कामिनियाँ किसे प्रिय नहीं हैं।

इत्येवमादिषु श्लोकेषु सत्स्वपि तिरस्कृतवाच्यध्वनिसमाश्रयेणापूर्वत्वमेव प्रतिभासते। तथा –

यः प्रथमः प्रथमः स तु तथाहि हतहस्तिबहलपललाशी।

श्वापदगणेषु सिंहः सिंहः केनाधरीक्रियते॥

इत्यादि श्लोकों के आदि में होने पर भी तिरस्कृत वाच्यध्वनि के सम्मेलन से अपूर्वत्व ही प्रतिभासित होता है। वैसे ही - जो प्रथम है वह प्रथम ही है। जैसा कि मारे गए हाथी के पर्याप्त मांस को खानेवाला अरण्य में रहनेवाले जानवरों में सिंह किससे अधरी (निम्न) नहीं किया जाता अर्थात् किसी से नहीं।

इत्यस्य

स्वतेजःक्रीतमहिमा केनान्येनातिशय्यते।

महद्भिरपि मातङ्गैः सिंहः किमभिभूयते॥

इसका- अपने पराक्रम से क्रीता (खरीदी हुई) महिमा किस अन्य के द्वारा दबाया जाता है? विशाल हाथियों से सिंह क्या अभिभूत (पराभूत) होता है?

इत्येवमादिषु श्लोकेषु सत्स्वप्यर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यध्वनिसमाश्रयेण नवत्वम्।

इत्यादि श्लोकों के होने पर भी पूर्वोक्त श्लोक में अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यध्वनि के सम्मेलन से नवत्व है।

विवक्षितान्यपरवाच्यस्याप्युक्तप्रकारसमाश्रयेण नवत्वम्।

यथा –

निद्राकैतविनः प्रियस्य वदने विन्यस्य वक्त्रं वधू-

र्बोधत्रासनिरुद्धचुम्बनरसाप्याभोगलोलं स्थिता।

वैलक्ष्याद्विमुखीभवेदिति पुनस्तस्याप्यनारम्भिणः

साकाङ्क्षप्रतिपत्ति नाम हृदयं यातं तु पारं रतेः॥

अभिधामूलाध्वनि (विवक्षितान्यपर वाच्य) के भी उक्त संलक्ष्यक्रमव्यङग्य एवम् असंलक्ष्यक्रमव्यङग्य भेदों के आश्रम से नवत्व होता है, जैसे- निद्रा का बहाना करनेवाले अपने प्रिय के मुख पर अपना मुख रखकर नववधू अपने पति के जग जाने के डर से चुम्बन की इच्छा को रोक कर भी पूर्ण रूप से देखने के कारण चञ्चल हो गई। लज्जा से विमुख हो जाएगी इससे फिर अपनी ओर से आरम्भ न करनेवाले उस प्रिय का भी हृदय साकाङ्क्ष की स्थिति में पहुँच कर रति की सीमा के पार चला गया।

इत्यादेः श्लोकस्य

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै

र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।

विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं

लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता॥

इत्यादि श्लोक का - शून्य (सूने) शयनकक्ष को देखकर, शयन करते हुए से थोड़ा उठकर, निद्रा का बहाना किए हुए पति के मुख को देर तक देखकर, विश्वास के साथ चुम्बन कर तदुपरान्त उत्पन्न रोमाञ्चवाली पति की गण्डस्थली को देखकर लज्जा से नम्र मुखवाली हँसती हुई बाला का प्रिय द्वारा देर तक चुम्बन किया गया।

उक्त दोनों पद्य का भाव एक ही है, किन्तु 'शून्यं वासगृहं' इत्यादि स्थलों में 'लज्जा' नामक सञ्चारी भाव के स्वशब्द वाच्यत्व एवं 'निर्वर्ण्य' में श्रुतिकटुत्व के कारण रसापकर्ष होता है। अन्यथा आलम्बन विभाव 'बाला', उद्दीपनविभाग 'निर्जनशयनकक्ष', व्यभिचारीभाव 'लज्जा' के होने पर सम्भोग श्रृङ्गार रस की चर्वणीयता दिखायी देती है। जबकि प्रथम पद्य में 'विलक्ष' का प्रयोग हुआ है, जिसका व्यङ्ग्यार्थ है लज्जा। नायक एवं नायिका; दोनों एक-दूसरे का चुम्बन करते हैं, अत: रति उभयनिष्ठ है एवं दोनों के चित्तवृत्ति को एक जैसे प्रकाशित करती हुई आस्वाद का विषय बनती है। अत: स्पष्ट है कि विवक्षितान्यपरवाच्य की नई भङ्गिमा का आश्रम लेने से भी पुराने अर्थ में भी नवत्व आ जाता है।

इत्यादिषु श्लोकेषु सत्स्वपि नवत्वम् । यथा वातरङ्गभ्रूभङ्गा इत्यादिश्लोकस्य नानाभङ्गिभ्रमद्भ्रूः इत्यादिश्लोकापेक्षयान्यत्वम् ।

इत्यादि श्लोकों के होते हुए भी नवत्व है। अथवा जैसे 'तरङ्गभ्रूभङ्गा' इत्यादि श्लोक का "नानाभङ्गिभ्रमद्भ्रूः" इत्यादि श्लोक की अपेक्षा अन्यत्व अर्थात् नवत्व है।

8.2.3 कारिका 03 की व्याख्या -

युक्त्याऽनयानुसर्तव्यो रसादिर्बहुविस्तरः ।

मिथोऽप्यनन्ततां प्राप्तः काव्यमार्गो यदाश्रयात् ॥ 3 ॥

इस प्रकार से बहुत विस्तार को प्राप्त रसादि का अनुसरण कर लेना चाहिए क्योंकि इसके आश्रय से साथ-साथ कवि का मार्ग भी नवीनता को प्राप्त कर लेता है।

बहु विस्तारोऽयं रसभावतदाभासतत्प्रशमलक्षणो मार्गो यथास्वं विभावानुभावप्रभेदकलनया यथोक्तं प्राक्। स सर्व एवानया युक्त्यानुसर्तव्यः। यस्य रसादेराश्रयादयं काव्यमार्गः पुरातनैः कविभिः सहस्रसंख्यैरसंख्यैर्वा बहुप्रकारं क्षुण्णत्वान्मितोऽप्यनन्ततामेति। रसभावादीनां हि प्रत्येकं विभावानुभावव्यभिचारिसमाश्रयादपरिमितत्वम्। तेषां चैकैकप्रभेदपेक्षयापि तावज्जगद्वृत्तमुप-निबध्यमानं सुकविभिस्तदिच्छावशादन्यथा स्थितमप्यन्यथैव विवर्तते। प्रतिपादितं चैतच्चित्रविचारावसरे ।

यह रस, भाव, भावाभास, भावप्रशम रूप मार्ग तथा विभाव, अनुभाव के प्रभेद की गणना करने से बहुत ही विस्तृत हो जाता है, जैसा कि प्रथमतः ही कहा जा चुका है। वह सभी इस युक्ति से अनुसरण करने योग्य है, जिस रसादि के आश्रय से यह काव्य-मार्ग प्राचीन सहस्रों अथवा असङ्ख्य कवियों द्वारा बहुत प्रकार से अभ्यस्त होने के कारण थोड़ा भी अनन्त बन जाता है। प्रत्येक विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारिभाव का पूर्ण रूप से आश्रय लेने के कारण रस, भाव आदि का आनन्त्य है और उनके एक-एक प्रभेद की अपेक्षा से भी संसार का व्यवहार उपनिबध्यमान होकर सुकवियों द्वारा उनकी इच्छावश दूसरे प्रकार से स्थित होकर भी दूसरे प्रकार का हो जाता है। इसे चित्रकाव्य के विचार के अवसर में प्रतिपादन किया गया है।

गाथा चात्र कृतैव महाकविना-

अतहट्ठिए वि तहसण्ठिए व्व हिअअम्मि जा णिवेसेइ।

अत्थविसेसे सा जअइ विकडकइगोअरा वाणी ॥

अतथास्थितानपि तथासंस्थितानिव हृदये या निवेशयति ।

अर्थविशेषान् सा जयति विकटकविगोचरा वाणी ॥ इतिच्छाया ॥

यहाँ महाकवियों ने यह गाथा भी कही है- जो उकृष्ट कवि हैं उनकी वाणी सर्वोत्कृष्ट अर्थात् सबसे बढ़कर है, जो रमणीय रूप में स्थित न होने वाले पदार्थ विशेषों को हृदय में उस प्रकार (रमणीय रूप में) स्थित जैसे निवेश कर देती है।

इस प्रकार रस, भाव आदि के आश्रय से काव्यार्थों का आनन्त्य सुष्ठु अर्थात् सम्यक् रूपेण प्रतिपादित हुआ। ध्वनि के तीन भेदों में रसध्वनि अनन्त है, तत्पश्चात् इन आठों के विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भावों का विस्तार होता है। विभाव के आलम्बन एवं उद्दीपन दो भेद होते हैं। आलम्बन विभाव में नायक-नायिका आते हैं। काव्यशास्त्रीय आचार्य ने नायिका के ही अनन्त भेद बताये हैं। सच्चाई तो यह है कि जितने भी स्त्री-पुरुष होते

हैं, उनमें कुछ न कुछ भेद अवश्य हुआ करता है और फिर उनकी चेष्टा ये भी भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। उद्दीपन-विभाव में भी जड चेतन पदार्थों की गणना की जा सकती है। व्यभिचारी भाव तो मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ ही है। अत: केवल रसध्वनि ही असीमित है। अन्य ध्वनियों की तो बात ही क्या। अत: रसध्वनि मात्र के आश्रय से ही काव्यमार्ग आनन्त्य को प्राप्त हो जाता है। अत: रसादि का अनुसरण करना चाहिए।

8.2.4 कारिका 04 की व्याख्या – 5

एतदेवोपपादयितुमुच्यते-

इसके उपपादन के लिए आचार्य आनन्द वर्धन अगली कारिका देते हैं –

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ।

सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः ॥ 4 ॥

काव्य में रस के परिग्रहण से पूर्व दृष्ट सभी अर्थ भी नवीनता को उसी प्रकार से प्राप्त कर लेते हैं, जिस प्रकार मधुमास अर्थात् वसन्त ऋतु के आने पर सभी वृक्षों में नवीनता आ जाती है ।

तथा हि विवक्षितान्यपरवाच्यस्यैव शब्दशक्त्युद्भवनुरणनरूपव्यङ्ग्यप्रकारसमाश्रयेण नवत्वम्। यथा "धरणीधारणायाधुनात्वं शेषः" इत्यादेः

शेषो हिमगिरिस्त्वं च महान्तो गुरवः स्थिराः ।

यदलङ्घितमर्यादाश्चलन्तीं बिभ्रते भुवम् ॥

इत्यादिषु सत्स्वपि।

जैसा कि विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का शब्द की शक्ति से उत्पन्न हुए अनुरणन रूप व्यङ्ग्य के आश्रम से नवत्व है, जैसे-पृथ्वी के धारण के लिए सम्प्रति तुम शेष हो इत्यादि का।

शेषनाग, हिमालय और तुम महान् गुरु (भारी) और स्थिर हो जो कि लङ्घित नहीं हैं। मर्यादा इनकी ऐसी है, जिनकी ऐसे तीनों चलती हुई पृथ्वी को धारण करते हैं, इत्यादि के होने पर भी प्रकृत उदाहरण में शब्द शक्त्युद्भव अलंकार ध्वनि के कारण चारुत्व के आ जाने से नवत्व प्रतीत होता है।

इत्यादि श्लोकों के होने पर भी

तस्यैवार्थशशक्त्युद्भवानुरणनरूपव्यङ्ग्यसमाश्रयेण नवत्वम् । यथा एवंवादिनि देवर्षौ इत्यादि श्लोकस्य-

उसी अभिधारण (विवक्षितान्यपरवाच्य) का अर्थशास्त्र दभव अनुरणनरूप व्यङ्ग्य का आश्रम लेने से नवत्व, जैसे 'इस प्रकार देवर्षि नारद के कहने पर' इत्यादि श्लोक का। व्यङ्ग्यर्थ की दृष्टी से पुराने अर्थ में नवीनता कैसे आ जाती है, इस विषय में उदाहरणों के माध्यम से बताने का प्रयास किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मात्र व्यङ्ग्यर्थ की दृष्टि से ही ध्वनि भेद अनन्तता को नहीं प्राप्त करते, अपितु व्यंजक शब्द भेद से प्रयोग करता है तो दूसरा कवि उसी शब्द को दूसरे भाव से प्रयोग करता है।

कृते वरकथालापे कुमार्यः पुलकोद्गमैः ।

सूचयन्ति स्पृहामन्तर्लज्जयावनताननः ॥

इत्यादिषु सत्सु

वर के सम्बन्ध में वार्ता करने पर रोमाञ्च के उद्गमों द्वारा लज्जा से नीचे झुकाये हुए मुखों वाली कुमारियाँ अपने आंतरिक अभिलाष को सूचित करतीं हैं। इत्यादि के होने पर।

इस श्लोक में 'लज्जा' तथा 'स्पष्टहा' ये दोनों शब्दत: उपात्त हैं या बाल रूप से कह दिये गये है, जिस कारण चारूत्व नहीं है, किन्तु लीला कमल पत्र की गणना से उनकी अभिव्यक्ति होती है। अत: अर्थशक्त्युद्भाव अनुसरण रूप व्यङ्ग्य के आश्रम से अर्थ में नवीनता आ गयी है। अर्थशक्ति से उत्पन्न अनुरणन रूप व्यङ्ग्य का कवि की प्रौढोक्ति से उत्पन्न शरीर होने के कारण नवत्व है। जैसे "वसन्तमास सजाता है" इत्यादि

का।

अर्थशक्त्युद्भवानुरणनरूपव्यङ्ग्यस्य कविप्रौढौक्तिनिमित्त-शरीरत्वेन नवत्वम्। यथा "सज्जेइ सुरहिमासो" इत्यादेः।

सुरभिसमये प्रवृत्ते सहसा प्रादुर्भवन्ति रमणीयाः।

रागवतामुत्कलिकाः सहैव सहकारकलिकाभिः ॥

इत्यादिषु सत्स्वप्यपूर्वत्वमेव।

वसन्तमास के प्रवृत्त होने पर प्रेमीजनों की उत्कण्ठाएँ आम की कलिकाओं के साथ ही उत्पन्न हो जाती हैं, इत्यादि श्लोकों के होने पर भी अपूर्वत्व (नवीनता) ही है। इसका भाव 'सज्जेई सुरहिमासो' में भी लिया गया है। भेद यह है कि इसमें वसन्तमास का कामदेव के बाणों को तैयार करना कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु है, जिससे कामदेव की दशा प्रकट होती है, अत: कवि कल्पित वस्तु से वस्तु ध्वनि के कारण पुराने भाव में नवीनता आ गयी है।

अर्थशक्त्युद्भवानुरणनरूपव्यङ्ग्यस्य कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिमात्रनिष्पन्नशरीरत्वे सति नवत्वम् । यथा- "वाणिअअ हत्थिदन्ता" इत्यादिगाथार्थस्य।

अर्थशक्ति से उत्पन्न अनुरणन व्यङ्ग्य का, कविनिबद्ध वक्ता की प्रौढोक्ति मात्र से निष्पन्नशरीर होने के कारण नवत्व है, जैसे उस व्यापारी हाथी के दाँत इत्यादि गाथा के अर्थ में। इत्यादि अर्थों के होने पर भी अस्पृष्टत्व है।

करिणीवेहव्वअरो मह पुत्तो एक्ककाण्डविणिवाइ ।

हअसोन्हाएँ तह कहो जह कण्डकरण्डअं वहइ ॥

करिणीवैधव्यकरो मम पुत्र एककाण्डविनिपाती ।

हतस्नुषया तथा कृतो यथा काण्डकरण्डकं वहति ॥ इतिच्छाया॥

एवमादिष्वर्थेषु सत्स्वप्यनालीढतैव। यथा व्यङ्ग्यभेदसमाश्रयेण ध्वनेः काव्यार्थानां नवत्वमुत्पद्यते तथा व्यञ्जकभेदसमाश्रयेणापि। तत्तु ग्रन्थविस्तरभयान्न लिख्यते, स्वयमेव सहृदयैरभ्यूह्यम्।

जैसे ध्वनि के व्यङ्ग्य भेद के सम्मेलन से काव्यार्थों की नवीनता निष्पन्न होती है, उसी प्रकार व्यञ्जक भेद के समाश्रयण से भी किन्तु उसे ग्रन्थ के विस्तृत हो जाने के भय से नहीं लिखते हैं। स्वयं ही सहृदय लोग तर्क (ऊह) कर लेंगे।

8.2.5 कारिका 05 की व्याख्या –

अत्र च पुनः पुनरुक्तमपि सारतयेदमुच्यते

और इसको यहाँ बार-बार कहे जाने पर भी इसे साररूप से यह कहते हैं-

व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावेऽस्मिन्विविधे सम्भवत्यपि।

रसादिमय एकस्मिन् कविः स्यादवधानवान् ॥ 5 ॥

इस व्यङ्ग्य-व्यञ्जकभाव के अनेक प्रकार से होने पर भी कवि को इसके एक रसादिमय ध्वनि के भेद के विषय में सावधान रहना चाहिए।

अस्मिन्नर्थानन्त्यहेतौ व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावे विचित्रे शब्दानां सम्भवत्यपि कविरपूर्वार्थलाभार्थी रसादिमय एकस्मिन् व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावे यत्नादवदधीत। रसभावतदाभासरूपे हि व्यङ्ग्ये तद्व्यञ्जकेषु च यथा निर्दिष्टेषु वर्णपद-वाक्यरचनाप्रबन्धेष्ववहितमनसः कवेः सर्वमपूर्वं काव्यं सम्पद्यते। तथा च रामायणमहाभारतादिषु सङ्ग्रामादयः पुनःपुनरभिहिता अपि नवनवाः प्रकाशन्ते ।

अर्थों के अनन्तता के उद्देश्य से इस व्यङ्ग्यव्यञ्जकभाव के विभिन्न रूप सम्भव होने पर भी लोक से अतिरिक्त चमत्कार युक्त काव्य के अर्थ सिद्धि के लिए, कवि को केवल एक ही रसादिमय व्यङ्ग्यव्यञ्जकभाव में प्रयत्नपूर्वक ध्यान दे। रस, भाव, रसाभास एवं भावाभास रूप

व्यङ्ग्य और उसके व्यञ्जक पूर्वोक्त वर्ण, पद, वाक्य, रचना तथा प्रबन्ध में सावधान कवि का सम्पूर्ण काव्य अपूर्व बन जाता है। इसीलिए रामायण, महाभारत आदि में संग्राम आदि अनेक बार वर्णित होने पर भी नये नये रूप में प्रकाशित होते हैं।

प्रबन्धे चाङ्गी रस एक एवोपनिबध्यमानोऽर्थविशेषलाभं छायातिशयं च पुष्णाति । कस्मिन्नवेति चेत्, यथा रामायणे यथा वा महाभारते । रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूत्रितः "शोकः श्लोकत्वमागतः" इत्येवंवादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।

प्रबन्ध काव्य में एक ही प्रधान रस विशेष रूप से निरूपित होकर विशेष अर्थ की सिद्धि तथा सौन्दर्य के अतिशय को पुष्ट करता है। जैसे कहा ? इसका उत्तर जैसे रामायण में अथवा जैसे महाभारत में। रामायण में **"शोकः श्लोकत्वमागतः"** कहने वाले आदिकवि वाल्मीकि ने स्वयं ही करुण रस सूचित किया है और सीता के अत्यन्त वियोगपर्यन्त ही काव्य की रचना करके उसका निर्वाह भी किया है।

महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि वृष्णिपाण्डवविरसावसानवैमनस्यदायिनीं समाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना वैराग्यजननतात्पर्यं प्राधान्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः शान्तो रसश्च मुख्यतया विवक्षा-विषयत्वेन सूचितः ।

शास्त्र और काव्यरूप दोनों की छाया से युक्त महाभारत में भी यादवों और पाण्डवों के विरस विनाश के कारण वैमनस्य जनक समाप्ति की रचना कर महामुनि (व्यास) ने अपने काव्य के वैराग्योत्पादन तात्पर्य को मुख्यतया प्रदर्शित करते हुए मोक्ष रूप पुरूषार्थ तथा शान्तरस मुख्य रूप से महाभारत काव्य का विवक्षा का विषय है यह सूचित किया गया है।

एतच्चांशेन विवृतमेवान्यैर्व्याख्याविधायिभिः। स्वयमेव चैतदुद्गीर्णं तेनोदीर्णमहामोहमग्नमुज्जिहीर्षता लोकमतिविमलज्ञानालोकदायिना लोकनाथेन-

यथा यथा विपर्येति लोकतन्त्रमसारवत् ।

तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः ॥

इत्यादि बहुशः कथयता। ततश्च शान्तो रसो रसान्तरैर्मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः पुरुषार्थान्तरैस्तदुपसर्जनत्वेनानुगम्यमानोऽङ्गित्वेन विवक्षाविषय इति महा-भारततात्पर्यं सुव्यक्तमेवावभासते। अङ्गाङ्गिभावश्च यथा रसानां तथा प्रतिपादितमेव। पारमार्थिकान्तस्तत्त्वानपेक्षया शरीरस्येवाङ्गभूतस्य रसस्य पुरुषार्थस्य च स्वप्राधान्येन चारुत्वमप्यविरुद्धम्। ननु महाभारते यावान्वि-वक्षाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तो न चैतत्तत्र दृश्यते, प्रत्युत सर्वपुरुषार्थप्रबोधहेतुत्वं सर्वरसगर्भत्वं च महाभारतस्य तस्मिन्नुद्देशे स्वशब्दनिवेदितत्वेन प्रतीयते।

उमड़ते हुए इस घोर अज्ञानान्धकार में निमग्न संसार का उद्धार करने की इच्छा से उज्ज्वल ज्ञानरूप प्रकाश को प्रदान करने वाले विश्वत्राता ने स्वयं भी कहा-जैसे जैसे हम इस विश्वप्रपञ्च के साररहित और मिथ्यारूप की प्रतीति होती जाती है वैसे वैसे इसके विषय में वैराग्य होता जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है। अनेक स्थानों पर इस प्रकार कहकर प्रकट किया है। इसलिए गुणीभूत अन्य रसों से अनुगत शान्तरस तथा गुणीभूत अन्य पुरूषार्थो से अनुगत मोक्षरूप पुरूषार्थ ही मुख्यतया वर्णनीय है। प्रधान रस के साथ अन्य रसों का अङ्गाङ्गिभाव जैसे होता है वह प्रतिपादन किया जा चुका है। प्रश्न -महाभारत में जितना प्रतिपाद्य विषय है वह सब ही अनुक्रमणी क्रम से स्वयं ही लिख दिया गया है। परन्तु वहाँ शान्त रस एवं मोक्ष प्राधान्य दिखलाई नहीं देता है।

अत्रोच्यते- सत्यं शान्तस्यैव रसस्याङ्गित्वं महाभारते मोक्षस्य च सर्वपुरुषार्थेभ्यः प्राधान्यमित्येतन्न स्वशब्दाभिधेयत्वेनानुक्रमण्या दर्शितम्, दर्शितं तु व्यङ्ग्यत्वेन- "भगवान्वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः" इत्यस्मिन् वाक्ये।

इस विषय में हम यह कह सकते हैं कि यह ठीक है, महाभारत में शान्त रस का ही मुख्यत्त्व और सब पुरुषार्थों की अपेक्षा मोक्ष का प्राधान्य, ये दोनो अनुक्रमणी में अपने वाचक शब्दों से नहीं दिखलाये है परन्तु व्यङ्ग्य रूप से दिखलाये गये हैं- नित्य श्रीकृष्ण की कीर्ति का गुणगान किया जाता है। इत्यादि वाक्य में।

अनेन ह्ययमर्थो व्यङ्ग्यत्वेन विवक्षितो यदत्र महाभारते पाण्डवादिचरितं यत्कीर्त्यते तत्सर्वमवसानविरसमविद्याप्रपञ्चरूपञ्च, परमार्थसत्यस्वरूपस्तु भगवान्वासुदेवोऽत्र कीर्त्यते। तस्मात्तस्मिन्नेव परमेश्वरे भगवति भवत भावितचेतसो, मा भूत विभूतिषु निःसारासु रागिणो गुणेषु वा नयविनय-पराक्रमादिष्वमीषु केवलेषु केषुचित्सर्वात्मना प्रतिनिविष्टधियः। तथा चाग्रे पश्यत निःसारतां संसारस्येत्यमुमेवार्थं द्योतयन् स्फुटमेवावभासते व्यञ्जकशक्त्यनुगृहीतश्च शब्दः। एवंविधमेवार्थं गर्भीकृतं सन्दर्शयन्तोऽनन्तरश्लोका

लक्ष्यन्ते "स हि सत्यम्" इत्यादयः।

इस वाक्य से व्यङ्ग्य रूप अर्थ विवक्षित है कि इस महाभारत में पाण्डव आदि के चरित्र का वर्णन जो किया जा रहा है वह सब विरसावसान और अविद्याप्रपञ्चरूप है। परमार्थ सत्यस्वरूप श्रीकृष्ण की कीर्ति का बखान किया गया है। अतः उस परम ऐश्वर्यशाली भगवान् में अपने मन को लगाओ। निसार विभूतियों में अनुरक्त मत हो। अथवा नीति, विनय, पराक्रम आदि केवल इन किसी गुणों में अपने मन को मत लगाओ। आगे संसार की निःसारता को देखो। इसी अर्थ को व्यङ्ग्यव्यञ्जक भाव शक्ति से युक्त शब्द अभिव्यक्त करते हुए प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार के अन्तर्निहित अर्थ को प्रकट करने वाले आगे के **"स हि सत्यं"** इत्यादि श्लोक दिखलाई देते हैं।

अयं च निगूढरमणीयोऽर्थो महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक्स्फुटीकृतः। अनेन चार्थेन संसारातीते तत्त्वान्तरे भक्त्यतिशयं प्रवर्तयता सकल एव सांसारिको व्यवहारः पूर्वपक्षीकृतो ध्यक्षेण प्रकाशते। देवतातीर्थतपःप्रभृतीनां च प्रभावातिशयवर्णनं तस्यैव पर-ब्रह्मणः प्राप्त्युपायत्वेन तद्विभूतित्वेनैव देवताविशेषाणामन्येषां च। पाण्डवादिचरितवर्णनस्यापि वैराग्यजननतात्पर्याद्वैराग्यस्य च मोक्षमूलत्वान्मोक्षस्य च भगवत्प्राप्त्युपायत्वेन मुख्यतया गीतादिषु प्रदर्शितत्वात् परब्रह्मप्राप्त्युपायत्वमेव परम्परया।

इस निगूढ़ और रमणीय अर्थ को महाभारत के अन्त में हरिवंश के वर्णन में समाप्ति रचना करते हुए उन्हीं कविप्रजापति कृष्णद्वैपायन व्यास ने ही भली प्रकार स्पष्ट कर दिया है। देवता, तीर्थ और तप आदि के अतिशय प्रभाव का वर्णन उसी परब्रह्म की प्रतिष्ठा का उपाय होने से ही और उसकी विभूतिरूप होने से अन्य देवता विशेषों का वर्णन महाभारत में किया गया है। पाण्डव आदि के चरित्र के वर्णन का भी वैराग्योत्पादन में तात्पर्य होने से और वैराग्य के मोक्ष हेतु उपाय रूप से गीतादि में प्रतिपादन होने से परम्परा से पाण्डवादि का चरित्र वर्णन भी परमब्रह्म की प्राप्ति के उपाय में ही है। वासुदेव आदि इन संज्ञाओं का वाच्यार्थ, गीतादि अन्य स्थलों में इस नाम से प्रसिद्ध, अपरिमित शक्तियुक्त मथुरा में कृष्णावतार द्वारा धारण किए गमादि समस्त रूपयुक्त परम्ब्रह्म ही अभिप्रेत है।

वासुदेवादिसञ्ज्ञाभिधेयत्वेन चापरिमितशक्त्यास्पदं परं ब्रह्म गीतादिप्रदेशान्तरेषु तदभिधानत्वेन लब्धप्रसिद्धि माथुरप्रादुर्भावानुकृतसकलस्वरूपं विवक्षितं न तु माथुरप्रादुर्भावांश एव, सनातनशब्दविशेषितत्वात्। रामायणादिषु चानया सञ्ज्ञया भगवन्मूर्त्यन्तरे व्यवहारदर्शनात्। निर्णीतश्चायमर्थः शब्दतत्त्वविद्भिरेव।

और रामायण आदि में इसी वासुदेव नाम से भगवान् के अन्य स्वरूपों का भी व्यवहार दिखलाई देता है। केवल मथुरा में प्रादुर्भूत वासुदेव के पुत्र कृष्ण नहीं। क्योंकि उसके साथ सनातन विशेषण दिया हुआ है। रामायण आदि में इस अभिधान से भगवान् की मूर्ति के अन्तर में व्यवहार के दर्शन करने से। शब्दतत्त्व के विशेषज्ञों वैयाकरणों ने इस विषय का निर्णय भी कर दिया है।

तदेवमनुक्रमणीनिर्दिष्टेन वाक्येन भगवद्व्यतिरेकिणः सर्वस्यान्यस्यानित्यतां प्रकाशयता मोक्षलक्षण एवैकः परः पुरुषार्थः शास्त्रनये, काव्यनये च तृष्णा-क्षयसुखपरिपोषलक्षणः शान्तो रसो महाभारतस्याङ्गित्वेन विवक्षित इति सुप्रतिपादितम्।

इस प्रकार भगवान् को छोड़कर अन्य सब वस्तुओं की अनित्यता प्रकाशित करनेवाले अनुक्रमणी निर्दिष्ट वाक्य से, शास्त्रदृष्टि से केवल मोक्षरूप परम पुरुषार्थ ही 'महाभारत' का मुख्य पुरुषार्थ और काव्यदृष्टि से तृष्णा के क्षय से जन्य सन्तोष सुख के परिपोष रूप शान्त रस ही 'महाभारत' का प्रधान रस अभिप्रेत है। यह भली प्रकार प्रतिपादन कर दिया गया।

अत्यन्तसारभूतत्वाच्चायमर्थो व्यङ्ग्यत्वेनैव दर्शितो, न तु वाच्यत्वेन। सारभूतो ह्यर्थः स्वशब्दानभिधेयत्वेन प्रकाशितः सुतरामेव शोभामावहति । प्रसिद्धिश्चेयमस्त्येव विदग्धविद्वत्परिषत्सु यदभिमततरं वस्तु व्यङ्ग्यत्वेन प्रकाश्यते न साक्षाच्छब्दवाच्यत्वेन। तस्मात्स्थितमेतत्अङ्गिभूतरसाद्याश्रयेण काव्ये क्रियमाणे नवार्थलाभो भवति बन्धच्छाया च महती सम्पद्यत इति।

अत्यन्त साररूप होने से यह अर्थ महाभारत' में शान्तरस और मोक्ष पुरुषार्थ का प्राधान्य व्यङ्ग्य ध्वनि रूप से ही प्रदर्शित किया है, वाच्यरूप से नहीं। सारभूत अर्थ अपने वाचक शब्द से वाच्यरूप में उपस्थित न होकर व्यङ्ग्य रूप से प्रकाशित होता है तो अत्यन्त शोभा को प्राप्त होता है। चतुर विद्वानों की मण्डली में यह प्रसिद्ध है ही कि अधिक अभिमत वस्तु व्यङ्ग्यरूप से ही प्रकाशित की जाती है, साक्षात् वाच्यरूप से नहीं। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि प्रधानभूत रसादि के आश्रय से काव्य की रचना करने पर नवीन अर्थ की प्राप्ति होती है और रचना का सौम्य बहुत अधिक बढ़ जाता है।

अत एव च रसानुगुणार्थविशेषोपनिबन्धमलङ्कारान्तरविरहेऽपि छायातिशययोगि लक्ष्ये दृश्यते । यथा-

मुनिर्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसम्भवः ।

येनैकचुलके दृष्टौ तौ दिव्यौ मत्स्यकच्छपौ ॥

इसीलिए अन्य अलङ्कारों के अभाव में भी रस के अनुरूप अर्थविशेष की रचना काव्यों में सौन्दर्यातिशयशालिनी दिखलाई देती है। जैसे- योगिराट् महात्मा अगस्त्य मुनि की जय हो, वें सर्वोत्कृष्ट हैं, जिन्होंने एक ही चूल्लू में उन दिव्य मत्स्य और कच्छप अवतारों का दर्शन कर लिया।

इत्यादौ। अत्र ह्यद्भुतरसानुगुणमेकचुलके मत्स्यकच्छपदर्शनं छायातिशयं पुष्णाति। तत्र ह्येकचुलके सकलजलधिसन्निधानादपि दिव्यमत्स्यकच्छपदर्शनमक्षुण्णत्वादद्भुतरसानुगुणतरम्। क्षुण्णं हि वस्तु लोकप्रसिद्ध्याद्भुतमपि नाश्चर्यकारि भवति। न चाक्षुण्णं वस्तूपनिबध्यमानमद्भुतरसस्यैवानुगुणं यावद्रसान्तरस्यापि । तद्यथा-

इत्यादि में। यहाँ अद्भुतरस के अनुकूल एक ही चुल्लू में मत्स्य और कच्छप का दर्शन अद्भुतरस के सौन्दर्य को अत्यन्त बढ़ाता है। उसमें एक चुल्लू में सम्पूर्ण समुद्र के समा जाने से भी अधिक दिव्य मत्स्य और कच्छप का दर्शन बिल्कुल अपूर्व होने से अद्भुत रस के अधिक अनुकूल है। लोकप्रसिद्धि से अत्यन्त अद्धुत होने पर भी अनेक बार की देखी हुई वस्तु आश्चर्योत्पादक नहीं होती। अपूर्व वस्तु का वर्णन न केवल अद्भुतरस के अपितु अन्य रसों के भी अनुकूल होता है। जैसे-

सिज्जइ रोमञ्चज्जइ, वेवइ रच्छातुलग्गपडिलग्गो।

सो पासो अज्ज वि सुबक तीन जेणासि वो लीणो।।

सो पासो अज्ज वि सुबक तीन जेणासि वो लीणो।।

स्विद्यति रोमाञ्चते वेपते रथ्यायान्तुलाग्रेण ।

स पार्श्वोऽद्यापि सुभग तस्या येनास्यतिक्रान्तः ॥ इतिच्छाया॥

हे सुभग, उस सँकरी गली में तुलाग्रेण, काकतालीयेन अकस्मात् उस मेरी सखी, नायिका के जिस पार्श्व से लगकर तुम निकल गये थे यह पार्श्वं अष मी स्वेदयुक्त, रोमाञ्चित और कम्पित हो रहा है।

कोई दूती नायक से नायिका के प्रणय का निवेदन करते हुए कहती है- 'उस दिन जब तुम उस गली से निकल रहे थे, तभी नायिका भी उधर से आ गयी। न तो तुमने उससे टकराने का प्रयास किया और न ही नायिका ने, किन्तु संयोगवशात् उसका एक पार्श्व तुम्हारे शारीर से टकरा गया। हे सुभग! उसी दिन से उसका वही पार्श्व कभी पसीजता है, कभी रोमाञ्चित हो जाता है और कभी काँपने लगता है। इस विषय में डॉ. रामसागर त्रिपाठी अपनी हिन्दी व्याख्या में लिखते हैं- **"सँकरी गली में संयोगिक स्पर्श और उससे केवल उसी पार्श्व का निरन्तर पसीजना इत्यादि न तो कवियों का सामान्य विषय है और न ही लौकिक घटना में प्राय: देखा जाता है। इसमें एक नवीनता है, जिससे इसमें रसास्वादन कराने की विशेष क्षमता उत्पन्न हो गयी है।"**

एतद्गाथार्थाद्भाव्यमानाद्या रसप्रतीतिर्भवति, सा त्वां स्पृष्ट्वा स्विद्यति रोमाञ्चते वेपते इत्येवंविधादर्थात्प्रतीयमानान्मनागपि नो जायते। तदेवं ध्वनिप्रभेदसमाश्रयेण यथा काव्यार्थानां नवत्वं जायते तथा प्रतिपादितम् । गुणीभूतव्यङ्ग्यस्यापि त्रिभेदव्यङ्ग्यापेक्षया ये प्रकारास्तत्समाश्रयेणापि काव्यवस्तूनां नवत्वं भवत्येव । तत्त्वतिविस्तारकारीति नोदाहृतं सहृदयैः स्वयमुत्प्रेक्षणीयम् ॥

इस गाथा के अर्थ की भावना करने से जो रस की प्रतीति होती है, वह तुमको छूकर यह नायिका पसीजती है, रोमाञ्चित होती है और कम्पित होती है, इस प्रकार के प्रतीयमान अर्थ से बिल्कुल नहीं होती है। 'त्वां स्पृष्ट्वा स्विद्यति' इत्यादि अर्थ चिरपरिचित है और उसके व्यङ्ग्य होने पर भी उतना चमत्कार नहीं प्रतीत होता, जितना ऊपर के श्लोक में वर्णित नवीन कल्पनायुक्त अर्थ के व्यङ्ग्य होने पर प्रतीत होता है। इस प्रकार ध्वनिभेदों के आश्रय से जिस प्रकार काव्यार्थों में नवीनता आ जाती है वह प्रतिपादन कर दिया। तीन प्रकार के व्यङ्ग्य रसादि, वस्तु तथा पाश्वअलङ्कार की दृष्टि से गुणीभूतव्यङ्ग्य के भी जो भेद होते हैं, उनके आश्रय से भी काव्यवस्तुओं में नवीनता आ जाती है। यह उदाहरण देने पर अत्यन्त विस्तारजनक है, इसलिए उसके उदाहरण नहीं दिये हैं, सहृदयों को स्वयं समझ लेना चाहिये ॥५॥

8.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नवीन वर्णनीय तत्त्वों के प्रादुर्भाव में प्रमुख कारण है -

   (क) सहृदय (ख) प्रतिभा (ग) काव्य (घ) गीत

2. चुल्लू में कच्छप एवं मत्स्यावतार का दर्शन करनेवाले ऋषि -

   (क) वाल्मीकि (ख) वशिष्ठ (ग) अगस्त्य (घ) याज्ञवल्क्य

3. काव्यार्थों में नवीनता कैसे आती है-

   (क) ध्वनिभेदों के आश्रय से (ख) लक्षणा से (ग) अभिधा से (घ) अधमकाव्य से

4. दिव्य मत्स्य एवं कच्छप का दर्शन किस रस के अनुकूल है -

   (क) श्रृङ्गार (ख) करुण (ग) अद्भुत (घ) वीर

5. वासुदेव शब्द से अभिप्रेत है-

   (क) कृष्ण (ख) बलराम (ग) लक्ष्मण (घ) राम

6. शब्दतत्त्व के विशेषज्ञ हैं -

   (क) मीमांसक (ख) नैयायिक (ग) वैशेषिक (घ) वैयाकरण श्रृ

7. महाभारत का प्रमुख रस है-

   (क) अद्भुत (ख) वीर (ग) करुण (घ) शान्त

8. "रसादिमय एकस्मिन् कविः स्यादवधानवान्" यह चतुर्थ उद्योत की कौन सी कारिका है-

   (क) पाँचवीं (ख) सातवीं (ग) छठवीं (घ) आठवीं

9. हरिवंश पुराण किस ग्रन्थ का भाग है -

   (क) रामायण (ख) महाभारत (ग) महाकाव्य (घ) खण्डकाव्य

10. रामायण का प्रमुख रस है.........

    (क) वीर (ख) अद्भुत (ग) शान्त (घ) करूण

8.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कारिका 01 की व्याख्या कीजिए।
2. कारिका 02 की व्याख्या कीजिए।
3. कारिका 03 की व्याख्या कीजिए।
4. कारिका 04 की व्याख्या कीजिए।
5. कारिका 05 की व्याख्या कीजिए।

8.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. रसध्वनि के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. अपूर्व वस्तु का निरूपण कीजिए।
3. अद्भुत रस के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
4. रामायण के प्रमुख रस में ध्वनि की स्थिति निरूपित कीजिए।
5. "सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः" इसकी व्याख्या कीजिए।

इकाई 9 – कारिका 06 से 17 तक की व्याख्या (चतुर्थ उद्योत)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कारिका की व्याख्यायें

9.2.1 कारिका 06 की व्याख्या

9.2.2 कारिका 07 की व्याख्या

9.2.3 कारिका 08 की व्याख्या

9.2.4 कारिका 09 की व्याख्या

9.2.5 कारिका 10 की व्याख्या

9.2.6 कारिका 11 की व्याख्या

9.2.7 कारिका 12 की व्याख्या

9.2.8 कारिका 13 की व्याख्या

9.2.9 कारिका 14 की व्याख्या

9.2.10 कारिका 15 की व्याख्या

9.2.11कारिका 16 की व्याख्या

9.2.12 कारिका 17 की व्याख्या

9.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

9.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

9.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत की 06 से लेकर 17 कारिकाओं तक की व्याख्या का अभिज्ञान कर सकेंगे।
- ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत की कारिका 06 से 17 तक के मध्य के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की पहचान कर सकेंगे।
- ध्वनि के लक्षण, भेद आदि का अवबोध कर सकेंगे।
- ध्वनि के सम्बन्ध में विविध मतों की समीक्षा कर सकेंगे।
- काव्यों में ध्वनित्व की पहचान कर सकेंगे।
- स्वकाव्यरचना में ध्वनितत्त्व का निर्माण करने में समर्थ होंगे।

9.1 प्रस्तावना

ध्वन्यालोक की इस इकाई में ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत की कारिका 06 से लेकर कारिका 17 तक की व्याख्या भी की जाएगी। स्थान-स्थान पर वर्णन क्रम में ध्वन्यालोक की वृत्ति की भी व्याख्या की जाएगी और यथास्थान अभिनवगुप्तविरचित लोचन टीका का भी वर्णन किया जाएगा।

9.2 कारिका की व्याख्यायें

9.2.1 कारिका 06 की व्याख्या -

ध्वनेरित्थं गुणीभूतव्यङ्ग्यस्य च समाश्रयात् ।

न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात्प्रतिभागुणः ॥ 6 ॥

यदि प्रतिभा नामक गुण से कवि युक्त हो तो इस प्रकार से ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य के समान आश्रय होने पर काव्य के रमणीय अर्थों में विराम नहीं होता। कहने का भाव यह है कि यदि कवि नव नवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा, जिसे प्रतिभा कहा जाता है, से युक्त है तो किसी भी विषय के लिए रमणीय अर्थों का अभाव नहीं होगा क्योंकि प्रतिभा के कारण कोई भी कवि एक ही विषय को जितनी बार कहेंगे, उतनी बार अलग तरह का कथन और रमणीय अर्थ भी पृथक् पृथक् होगा ।

सत्स्वपि पुरातनकविप्रबन्धेषु यदि स्यात्प्रतिभागुणः। तस्मिंस्त्वसति न किञ्चिदेव कवेर्वस्त्वस्ति। बन्धच्छायाप्यर्थद्वयानुरूपशब्दसन्निवेशोऽर्थप्रतिभानाभावे कथमुपपद्यते। अनपेक्षितार्थविशेषाक्षररचनैव बन्धच्छायेति नेदं नेदीयः सहृदयानाम्। एवं हि सत्यर्थानपेक्षचतुरमधुरवचनरचनायामपि काव्यव्यपदेशः प्रवर्तेत। शब्दार्थयोः साहित्येन काव्यत्वे कथं तथाविधे विषये काव्यव्यवस्थेति चेत्परोपनिबद्धार्थविरचने यथा तत्काव्यत्वव्यवहारस्तथा तथाविधानां काव्यसन्दर्भाणाम्।

प्राचीन कवियों के प्रबन्धों के होने पर भी यदि कवि में प्रतिभा गुण है तो नवीन अर्थों की समाप्ति नहीं होगी और न होने पर तो कवि के पास वर्णनीय वस्तु ही नहीं होगी ।

ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य अर्थद्वय के अनुरूप शब्द का सन्निवेश रूप बन्धच्छाया भी अर्थ के प्रतिभान के अभाव में कैसे उपपन्न हो सकती है। अर्थ की अपेक्षा न करके अक्षररचना ही बन्धच्छाया है और वह सहृदयों के सन्निकट नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर अर्थ की अपेक्षा न रखनेवाले चतुर और मधुर वचन की रचना में भी काव्य का व्यवहार चल पड़ेगा। शब्द और अर्थ के साहित्य से काव्यत्व के होने पर कैसे उस प्रकार के विषय में काव्य की व्यवस्था होती है। इस पर कहते हैं कि दूसरे द्वारा उपनिबद्ध अर्थ के बनाने में जैसे वह काव्य का व्यवहार हो जाता है, उसी प्रकार अर्थ की अपेक्षा न रखनेवाले काव्यसन्दर्भों का भी हो जाता है।

9.2.2 कारिका 07 की व्याख्या –

न चार्थानन्त्यं व्यङ्ग्यार्थापेक्षयैव यावद्वाच्यार्थापेक्षयापीति प्रतिपादयितुमुच्यते-

और न केवल अर्थ का आनन्त्य है जबकि व्यङ्ग्यार्थ की अपेक्षा से ही है, अपितु वाच्यार्थ की अपेक्षा से भी है। यह प्रतिपादन करने के लिए कहा है-

अवस्थादेशकालादिविशेषैरपि जायते।

आनन्त्यमेव वाच्यस्य शुद्धस्यापि स्वभावतः ॥ 7 ॥

व्यङ्ग्यार्थ की अपेक्षा न रखने वाला केवल शुद्ध वाच्य अर्थ की अनन्तरूपता अवस्था, देश, कालादि के वैशिष्ट्य से स्वाभाविक रूप से हो जाती है।

शुद्धस्यानपेक्षितव्यङ्ग्यस्यापि वाच्यस्यानन्त्यमेव जायते स्वभावतः। स्वभावो ह्ययं वाच्यानां चेतनानामचेतनानां च यदवस्थाभेदाद्देशभेदात्कालभेदात्स्वालक्षण्यभेदाच्चानन्तता भवति। तैश्च तथा व्यवस्थितैः सद्भिः प्रसिद्धानेकस्व-भावानुसरणरूपया स्वभावोक्त्यापि तावदुपनिबध्यमानैर्निरवधिः काव्यार्थः सम्पद्यते। तथा ह्यवस्थाभेदान्नवत्वम्। यथा- भगवती पार्वती कुमारसम्भवे

"सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन" इत्यादिभिरुक्तिभिः प्रथममेव परिसमापितरूपवर्णनापि पुनर्भगवतः शम्भोर्लोचनगोचरमायान्ती "वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती" मन्मथोपकरणभूतेन भङ्ग्यन्तरेणोपवर्णिता। सैव च पुनर्नवोद्वाहसमये प्रसाध्यमाना "तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य तन्वीम्' इत्याद्युक्तिभिर्नवेनैव प्रकारेण निरूपितरूपसौष्ठवा। न च ते तस्य कवेरेकत्रैवासकृत्कृता वर्णनप्रकारा अपुनरुक्तत्वेन वा नवनवार्थनिर्भरत्वेन वा प्रतिभासन्ते।

शुद्ध अर्थात् व्यङ्ग्यनिरपेक्ष वाच्य अर्थ का भी स्वभावतः आनन्त्य हो ही जाता है। चेतन और अचेतन वाच्य अर्थों का यह स्वभाव है कि अवस्थाभेद, देशभेद, कालभेद और स्वरूपभेद से उनकी अनन्तता हो जाती है। उन वाच्यार्थों के उस प्रकार अवस्थादि भेद से नये-नये अर्थों के प्रकाशनरूप में व्यवस्थित होने पर अनेक प्रकार के प्रसिद्ध स्वभावों के वर्णनरूप स्वभावोक्ति से भी वाच्यार्थ रचना करने पर काव्यार्थ अनन्तरूप हो जाता है। जैसाकि अवस्थाभेद के कारण नवीनता। जैसे 'कुमारसम्भव' में 'सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन' इत्यादि उक्तियों से प्रथमतः भगवती पार्वती के रूप वर्णन के समाप्त हो जाने पर भी फिर शङ्कर भगवान सामने आती हुई पार्वती को 'वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती' इत्यादि से कामदेव के साधनरूप में प्रकारान्तर से फिर से वर्णन किया गया है और फिर नवीन विवाह के समय सती-रूप में विवाह के बाद फिर दूसरे जन्म में पार्वतीरूप में शिव के साथ विवाह, नवीन विवाह शब्द से अभिप्रेत हैं। अलङ्कृत की जाती हुई पार्वती के सौन्दर्य का **"तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य तन्वीम्"** इत्यादि उक्तियों से फिर तीसरी बार नये ढंग से उसके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है, अवस्था भेद से किये ये सब वर्णन सुन्दर प्रतीत होते हैं, किन्तु कवि के एक ही जगह अनेक बार किये हुए वे एक ही प्रकार के वर्णन अपुनरुक्तरूप अथवा अभिनवार्थ परिपूर्ण रूप नहीं प्रतीत होते हैं, उसका ध्यान रखना चाहिए।

दर्शितमेव चैतद्विषमबाणलीलायाम् -

ण अ ताण घडइ ओही ण अ ते दीसन्ति कह वि पुनरुत्ता ।

जे विब्भमा पिआणं अत्था सुकइवाणीणम् ।।

न च तेषां घटतेऽवधिः, न च ते दृश्यन्ते कथमपि पुनरुक्ताः ।

ये विभ्रमाः प्रियाणामर्था वा सुकविवाणीनाम् ॥ (इतिच्छाया)

यह हम 'विषमबाणलीला' में दिखा ही चुके हैं- प्रियतमाओं अथवा प्रियजनों के जो हावभाव और सुकवियों की वाणी के जो अर्थ हैं; इनकी न कोई सीमा ही बन सकती है और न ये किसी भी दशा में पुनरुक्त प्रतीत होते हैं। कहने का आशय यह है कि प्रियजनों के जितने विलास या श्रृङ्गारिक हाव-भाव हुआ करते हैं एवं सत्कवियों के जितने अर्थ हुआ करते हैं, उनकी इयत्ता निश्चित नहीं की जा सकती और यदि एक ही प्रकार के विलास बार-बार होते हैं तो भी उनमें किसी प्रकार का पुरानापन एवं पुनरुक्ति नहीं प्रतीत होती।

अयमपरश्चावस्थाभेदप्रकारो यदचेतनानां सर्वेषां चेतनं द्वितीयं रूपमभिमानित्वप्रसिद्धं हिमवद्गङ्गादीनाम् । तच्चोचितचेतनविषयस्वरूपयोजनयोपनिबध्यमानमन्यदेव सम्पद्यते । यथा कुमारसम्भव एव पर्वतस्वरूपस्य हिमवतो वर्णनम्, पुनः सप्तर्षिप्रियोक्तिषु चेतनतत्स्वरूपापेक्षया प्रदर्शितं तदपूर्वमेव प्रतिभाति। प्रसिद्धश्चायं सत्कवीनां मार्गः। इदं च प्रस्थानं कविव्युत्पत्तये विषमबाणलीलायां सप्रपञ्चं दर्शितम् ।

अवस्थाभेद का यह और दूसरा प्रकार भी है कि हिमालय, गङ्गा आदि सभी अचेतन पदार्थों का अभिमानी देवता रूप में दूसरा चेतनरूप भी प्रसिद्ध है और यह उचित चेतन विषय के स्वरूपयोजना से उपनिबद्ध होकर अचेतन रूप से भिन्न कुछ और ही हो जाता है। जैसे 'कुमारसम्भवम्' में ही आरम्भ में पर्वतरूप से हिमालय का वर्णन है, फिर सप्तर्षियों के प्रिय वचनों में उस हिमालय के चेतन स्वरूप की दृष्टि से प्रदर्शित यह हिमालय का पुनः किया हुआ वर्णन अपूर्व सा प्रतीत होता है। और सत्कवियों में यह मार्ग अचेतनों के चेतनवद् वर्णन का मार्ग प्रसिद्ध ही है।

चेतनानां च बाल्याद्यवस्थाभिरन्यत्वं सत्कवीनां प्रसिद्धमेव। चेतनानामवस्थाभेदेऽप्यवान्तरावस्थाभेदान्नानात्वम्। यथा कुमारीणां कुसुमशरभिन्नहृदयानामन्यासां च। तत्रापि विनीतानामविनीतानां च। अचेतनानां च भावानामारम्भाद्यवस्थाभेदभिन्नानामेकैकशः स्वरूपमुपनिबध्यमानमानन्त्यमेवोपयाति ।

कवियों की व्युत्पत्ति के लिए 'विषमबाणलीला' में इस मार्ग को हमने विस्तारपूर्वक प्रदर्शित किया है। चेतनों का बाल्य आदि अवस्थाभेद से भेद सत्कवियों में प्रसिद्ध ही है। चेतनों के अवस्था भेद के वर्णन में अवान्तर अवस्थाभेद से भी भेद हो सकता है। जैसे काम के बाण से बिद्ध हृदयवाली तथा अन्य स्वस्थ कुमारियों का अवान्तर अवस्था भेद से भेद होता है। उनमें भी विनीत और उच्छल कन्याओं का अवान्तर अवस्था

आदि के भेद से नानात्व हो जाता है। आरम्भ आदि अवस्थाभेद से भिन्न अचेतन पदार्थों का स्वरूप भी अलग अलग वर्णन से अनन्तता को प्राप्त हो ही जाता है।

यथा-

हंसानां निनदेषु यैः कवलितैरासज्यते कूजता-

मन्यः कोऽपि कषायकण्ठलुठनादाघर्घरो विभ्रमः ।

ते सम्प्रत्यकठोरवारणवधूदन्ताङ्कुरस्पर्धिनो

निर्याताः कमलाकरेषु बिसिनीकन्दाग्रिमग्रन्थयः ॥

जैसे- जिनके खाने से कूजते हुए हंसों के निनादों में, मधुर कण्ठ के संयोग से, घर्घर ध्वनियुक्त कुछ नया अपूर्व ही विभ्रम उत्पन्न हो जाता है, करिणी के नये कोमल दन्ताङ्कुरों से स्पर्धा करनेवाली मृणाल की वे नवीन ग्रन्थियाँ इस समय तालाबों में निकल आयी हैं।

यहाँ बिसीनीकन्द की नवीन ग्रन्थियों के आरम्भ का वर्णन होने से अवस्था भेदमूलक चमत्कार प्रतीत होता है।

एवमन्यत्रापि दिशानयानुसर्तव्यम्।

देशभेदान्नानात्वमचेतनानां तावत् यथा वायूनां नानादिग्देशचारिणामन्येषामपि सलिलकुसुमादीनां प्रसिद्धमेव। चेतनानामपि मानुषपशुपक्षिप्रभृतीनां ग्रामारण्यसलिलादिसमेधितानां परस्परं महान्विशेषः समुपलक्ष्यत एव। स च विविच्य यथायथमुपनिबध्यमानस्तथैवानन्त्यमायाति।

इस प्रकार और जगह भी इस मार्ग का अनुसरण किया जाना चाहिये। देशभेद से पहले अचेतनों का भेद, जैसे मलय आदि देश विभिन्न दिशाओं और स्थानों में सञ्चरण करनेवाले पवनों का और अन्य जल तथा पुष्प आदि का भी भेद प्रसिद्ध ही है। चेतनों में भी ग्राम, अरण्य, जल आदि में पले हुए मनुष्य, पशु, पक्षी प्रभृति में परस्पर भेद दिखलाई ही देता है। वह भी विचारपूर्वक ठीक ढंग से वर्णित होने पर उसी प्रकार अनन्त हो जाता है।

तथा हि- मानुषाणामेव तावद्दिग्देशादिभिन्नानां ये व्यवहारव्यापारादिषु विचित्रा विशेषास्तेषां केनान्तः शक्यते गन्तुम्, विशेषतो योषिताम्। उपनिबध्यते च तत्सर्वमेव सुकविभिर्यथाप्रतिभम्।

जैसे नाना दिग्, देश आदि से मनुष्यों के ही व्यवहार और व्यापार आदि में जो नाना प्रकार के भेद पाये जाते हैं। उन सबका पार कौन पा सकता है? विशेषकर स्त्रियों के विषय में पार पाना असम्भव ही है। सुकवि लोग अपनी प्रतिभा के अनुसार उस सबका वर्णन करते ही हैं।

कालभेदाच्च नानात्वम्। यथर्तुभेदाद्दिग्व्योमसलिलादीनामचेतनानाम्। चेतनानां चौत्सुक्यादयः कालविशेषाश्रयिणः प्रसिद्धा एव। स्वालक्षण्यप्रभेदाच्च सकलजगद्गतानां वस्तूनां विनिबन्धनं प्रसिद्धमेव। तच्च यथावस्थितमपि तावदुपनिबध्यमानमनन्ततामेव काव्यार्थस्यापादयति।

कालभेद से भी भेद होता है। जैसे ऋतुओं के भेद से दिग्, आकाश, जल आदि अचेतन का भेद होता है और काल वसन्तादि विशेष के आश्रय से चेतनों के औत्सुक्य आदि प्रसिद्ध ही हैं। समस्त संसार की वस्तुओं में अपने स्वरूप स्वालक्षण्य भेद से काव्य में विशेष वर्णन प्रसिद्ध ही है। और वह स्वरूप जैसा कुछ है उसी रूप में उपनिबद्ध होकर भी काव्य के विषय की अनन्तता को उत्पन्न करता है।

अत्र केचिदाचक्षीरन्- यथा सामान्यात्मना वस्तूनि वाच्यतां प्रतिपद्यन्ते न विशेषात्मना । तानि हि स्वयमनुभूतानां सुखादीनां तन्निमित्तानां च स्वरूपमन्यत्रारोपयद्भिः स्वपरानुभूतरूपसामान्यमात्राश्रयेणोपनिबध्यन्ते कविभिः। न हि तैरतीतमनागतं वर्तमानञ्च परिचितादिस्वलक्षणं योगिभिरिव प्रत्यक्षीक्रियते ; तच्चानुभाव्यानुभवसामान्यं सर्वप्रतिपत्तृसाधारणं परिमितत्वात्पुरातनानामेव गोचरीभूतम्, तस्याविषयत्वानुपपत्तेः। अत एव स प्रकारविशेषो यैरद्यतनैरभिनवत्वेन प्रतीयते तेषामपि मानमात्रमेव भणितिकृतं वैचित्र्यमात्रमत्रास्तीति।

(पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए ध्वन्यालोककार कहते हैं कि यहाँ स्वालक्षण्यकृत भेदके विषय में) कुछ लोग कह सकते हैं कि- वस्तुएँ सामान्य रूप से ही वाच्य होती हैं, विशेष रूप से नहीं। कवि लोग उन स्वयं अनुभूत सुखादि वस्तुओं और उन सुखादि के साधनों स्रक्, चन्दन, वनिता आदि के स्वरूप को अन्यत्र नायकादि में आरोपित करके अपने और दूसरों के अनुभूत सामान्यमात्र के आश्रय से उन नायकादि के सुखादि और

उसके साधनों का वर्णन करते हैं। वे कवि लोग योगियों के समान अतीत, अनागत, वर्तमान दूसरों के चित्त (व्यक्तियों और उनमें रहने वाले सुख-दुःख आदि) का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते हैं। और समस्त देखने वालों को एक क्रम से प्रतीत होने वाले वे अनुभाव्य सुखादि तथा अनुभावक उस सुखादि के साधन स्रक्, चन्दन, वनितादि सामान्य परिमित होने से प्राचीन कवियों को ही ज्ञात हो चुके हैं। अन्यथा वे ज्ञान के विषय ही नहीं हो सकते थे। इसलिए उस स्वालक्षण्यरूप प्रकार विशेष को जो आजकल के लोग अभिनव रूप में अनुभव करते हैं, वह उनका अभिमानमात्र ही है या केवल उक्तिवैविध्य ही है। वस्तु में नवीनता नहीं है, उक्तिवैचित्र्य के कारण ही नवीनता का भ्रम या अभिमान होने लगा है (यह पूर्वपक्ष का आशय है)

तत्रोच्यते- यत्तूक्तं सामान्यमात्राश्रयेण काव्यप्रवृत्तिस्तस्य च परिमितत्वेन प्रागेव गोचरीकृतत्वान्नास्ति नवत्वं काव्यवस्तूनामिति, तदयुक्तम् ; यतो यदि सामान्यमात्रमाश्रित्य काव्यं प्रवर्तते किङ्कृतस्तर्हि महाकविनिबध्यमानानां काव्यार्थानामतिशयः? वाल्मीकिव्यतिरिक्तस्यान्यस्य कविव्यपदेश एव वा । सामान्यव्यतिरिक्तस्यान्यस्य काव्यार्थस्याभावात्, सामान्यस्य चादिकविनैव प्रदर्शितत्वात्। उक्तिवैचित्र्यान्नैष दोष इति चेत् - किमिदमुक्तिवैचित्र्यम्? उक्तिर्हि वाच्यविशेषप्रतिपादित वचनम् । तद्वैचित्र्ये कथं न वाच्यवैचित्र्यम्? वाच्यवाचकयोरविनाभावेन प्रवृत्तेः। वाच्यानां च काव्ये प्रतिभासमानानां यद्रूपं तत्तु ग्राह्यविशेषाभेदेनैव प्रतीयते। तेनोक्तिवैचित्र्यवादिना वाच्यवैचित्र्यमनिच्छताप्यवश्यमेवाभ्युपगन्तव्यम् । तदयमत्र सङ्क्षेपः –

वाल्मीकिव्यतिरिक्तस्य यद्येकस्यापि कस्यचित् ।

इष्यते प्रतिभार्थेषु तत्तदानन्त्यमक्षयम् ॥

किञ्च, उक्तिवैचित्र्यं यत्काव्यनवत्वे निबन्धनमुच्यते तदस्मत्पक्षानुगुणमेव । यतो यावानयं काव्यार्थानन्त्यभेदहेतुः प्रकारः प्राग्दर्शितः स सर्व एव पुनरुक्तिवैचित्र्याद् द्विगुणतामापद्यते। यश्चायमुपमाश्लेषादिरलङ्कारवर्गः प्रसिद्धः स भणितिवैचित्र्यादुपनिबध्यमानः स्वयमेवानवधिर्धत्ते पुनः शतशाखताम् । भणितिश्च स्वभाषाभेदेन व्यवस्थिता सती प्रतिनियतभाषागोचरार्थवैचित्र्यनिबन्धनं पुनरपरं काव्यार्थानामानन्त्यमापादयति । यथा ममैव -

मह मह इत्ति भणन्तउ वज्जदि कालो जणस्स ।

तोइ ण देओ जणद्दण गोअरी भोदि मणस्ते ।।

मम मम इति भणतो व्रजति कालो जनस्य ।

तथापि न देवो जनार्दनो गोचरो भवति मनसः ॥ (इतिच्छाया)

(उत्तरपक्ष प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं) उस विषय में हमारा कहना है कि आपने जो यह कहा है कि सामान्यमात्र के आश्रय से काव्यरचना होती है और उस सामान्य का ज्ञान प्रथमतः ही कवियों को हो चुका है, अतः काव्यवस्तुओं में नवीनता नहीं हो सकती है। यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि यदि सामान्यमात्र के आश्रयसे काव्य की रचना होती है तो महाकवियों द्वारा वर्णित काव्य पदार्थों में विशेष तारतम्य किस कारण से होता है? अथवा वाल्मीकि आदिकवि को छोड़कर अन्य किसी को कवि ही किस आधार पर कहा जाता है? क्योंकि आपके मत में सामान्य के अतिरिक्त और कोई काव्य का वर्ण्य विषय नहीं हो सकता है और सामान्य का प्रदर्शन आदिकवि वाल्मीकि ही कर चुके हैं, इसलिए अन्य किसी के पास नवीन वर्ण्य विषय न होने से अन्य कोई कवि, न कवि हो सकता है और न वाल्मीकि से भिन्न उसकी रचना में कोई नवीनता ही आ सकती है।

यह सिद्धान्तपक्ष की ओर से पूर्वपक्षपर प्रश्न है। पूर्वपक्षी उक्तिवैचित्र्य के आधार पर इसका उत्तर देते हैं। उक्ति के वैचित्र्य के कारण यह दोष नहीं आ सकता है अर्थात् उक्ति-कथनशैली के विचित्र होने से महाकवियों की रचनाओं में तारतम्य होता है और इसी उक्तिवैचित्र्य के आधार पर अन्य कवियों को कवि कहा जा सकता है।

आगे सिद्धान्तपक्ष की ओर से इसी को अपने नवीनता पक्ष का साधक बनाया जाता है। यह कहो तो, यह उक्तिवैचित्र्य क्या पदार्थ है? वाच्यविशेष का प्रतिपादन करनेवाले वचन का नाम ही उक्ति है। उस वचन में वैचित्र्य मानने पर उसके वाच्यार्थ में वैचित्र्य क्यों नहीं होगा? वाच्य और वाचक की तो अविनाभावसम्बन्ध से प्रवृत्ति होती है इसलिए वाचक उक्ति में वैचित्र्य होने से वाच्य में भी वैचित्र्य होना आवश्यक है। काव्य में प्रतीत होनेवाले वाच्यों का जो स्वरूप है वह कवि के स्वयं अनुभूत ग्राह्यविशेष प्रत्यक्ष प्रमाण से कवि द्वारा स्वयं गृहीत सुखादि तथा उसके साधनादि से अभिन्न रूप में ही प्रतीत होता है इसलिए केवल सामान्यमात्र के आश्रय से ही नहीं अपितु स्वयं अनुभूत विशेष के भी आश्रय से काव्यरचना होती है। अतएव उसमें अनन्तता होना अनिवार्य है]। इसलिए उक्तिवैचित्र्य माननेवाले को इच्छा न रहते हुए भी वाच्य का वैचित्र्य

अवश्य ही मानना होगा। अतएव इस विषय का सारांश यह हुआ कि यदि वाल्मीकि के अतिरिक्त किसी एक भी कवि के पदार्थी में प्रतिभा का सम्बन्ध मानना अभीष्ट है तो वह आनन्त्य सर्वत्र अक्षय है और उक्ति वैचित्र्य को जो काव्य में नवीनता लाने का हेतु कहते हैं वह तो हमारे पक्ष के अनुकूल ही है। क्योंकि काव्यार्थ के आनन्त्य के हेतु रूप में यह अवस्था, कालदेश आदि जितने प्रकार प्रथमतः दिखलाये गए हैं, वें सब उक्ति के वैचित्र्य से फिर द्विगुण अनन्त हो जाते हैं और जो ये उपमा, श्लेष आदि वाच्य अलङ्कारवर्ग प्रसिद्ध हैं, ये स्वयं ही अपरिमित होनेपर भी उक्तियों से उपनिबद्ध होकर फिर सैकड़ों शाखाओं से युक्त हो जाते हैं। और अपनी भाषाओ के भेद से व्यवस्थित विभिन्न उक्ति, भक्ति विशेष भाषा प्रतिनियत, उस विशेष भाषा विषयक अधिक वैचित्र्य के कारण काव्यार्थो में फिर और भी अनात्म्य उत्पन्न कर देती है। जैसे मेरा ही- यह मेरा वह मेरा कहते-कहते ही मनुष्य के जीवन का सारा समय निकल जाता है परन्तु मन में जनार्दन भगवान् का साक्षात्कार नहीं हो पाता।

भाषा भेद से भी काव्यार्थ में अनन्तता आती है और इसका कारण बनता है- उक्ति वैचित्र्य लोक व्यवहार में अनेक भाषायें व्यवहृत होती हैं और उनकी अपनी-अपनी विशेषतायें हुआ करती है। उन विशेषताओं से उक्ति वैचित्र्य हुआ करता है, जिससे काव्यर्थो में अनन्तता आती है।

9.2.3 कारिका 08 की व्याख्या -

इत्थं यथा यथा निरूप्यते तथा तथा न लभ्यतेऽन्तः काव्यार्थानाम्। इदं तूच्यते-

इस प्रकार जैसे जैसे ही हम इसका निरूपण करते हैं वैसे वैसे ही काव्यार्थ का अन्त नहीं मिलता है, उतना ही काव्यार्थ में अनन्तता प्रतीत होती है। इसलिए तो यह कहा गया है-

अवस्थादिविभिन्नानां वाच्यानां विनिबन्धनम्।

यत्प्रदर्शितं प्राक्

भूम्नैव दृश्यते लक्ष्ये

न तच्छक्यमपोहितुम्

तत्तु भाति रसाश्रयात्॥ 8॥

अवस्थादि के द्वारा होने वाले भेद से वाच्यार्थ में होने वाली नवीनता को पहले ही दिखाया जा चुका है, जो कि काव्य रूपी लक्ष्य में देखा जाता है। अतः उसका अपलाप नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि काव्यार्थ रस के आश्रय से प्रकाशित होता है।

9.2.4 कारिका 09 की व्याख्या -

तदिदमत्र सङ्क्षेपेणाभिधीयते सत्कवीनामुपदेशाय-

रसभावादिसम्बद्धा यद्यौचित्यानुसारिणी।

अन्वीयते वस्तुगतिर्देशकालादिभेदिनी॥ 9॥

तत्का गणना कवीनामन्येषां परिमितशक्तीनाम् -

तो यहाँ यह सत्कवियों के उपदेश के लिए सङ्क्षेप में कहते हैं- अर्थात् परिमित शक्ति वाले दूसरे साधारण कवियों की तो बात ही क्या ? यदि औचित्य का अनुसरण करने वाले रस, भाव आदि से सम्बद्ध देश, कालादि के भेदों से युक्त वस्तु रचना का अनुसरण किया जाए तो अन्य सीमित प्रतिभावाले कवियों की क्या गणना?

9.2.5 कारिका 10 की व्याख्या -

वाचस्पतिसहस्राणां सहस्रैरपि यत्नतः।

निबद्धा सा क्षयं नैति प्रकृतिर्जगतामिव॥ 10॥

हजारों हजार बृहस्पतियों के यत्नपूर्वक वर्णन करने से भी काव्यार्थ का अन्त नहीं प्राप्त हो सकता है ठीक उसी प्रकार जैसे संसार के उपादान कारण, प्रकृति के अन्त का ज्ञान नहीं हो पाता है।

यथा हि जगत्प्रकृतिरतीतकल्पपरम्पराविर्भूतविचित्रवस्तुप्रपञ्चासती पुनरि-दानीं परिक्षीणा परपदार्थनिर्माणशक्तिरिति न शक्यतेऽभिधातुम् । तद्वदेवेयं काव्यस्थितिरनन्ताभिः कविमतिभिरुपभुक्तापि नेदानीं परिहीयते, प्रत्युत नवनवाभिर्व्युत्पत्तिभिः परिवर्धते।

जिस प्रकार जगत् की प्रकृति अतीत कल्प परम्परा से आविर्भूत विचित्र वस्तुप्रपञ्च को उत्पन्न करती है फिर अब पदार्थों के निर्माण की शक्ति परिक्षीण हो चुकी ऐसा नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार यह काव्यस्थिति अनन्त कविबुद्धियों द्वारा भी होकर इस समय समाप्त नहीं है अपितु नये- नये व्युत्पत्तियों से वर्धित होती है।

9.2.6 कारिका 11 की व्याख्या –

इत्थं स्थितेऽपि –

इस प्रकार रहने पर भी-

संवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्।

स्थितं ह्येतत् संवादिन्य एव मेधाविनां बुद्धयः। किन्तु

नैकरूपतया सर्वे ते मन्तव्या विपश्चिता ॥ 11 ॥

अच्छी मेधावाले व्यक्तियों की बुद्धि परस्पर मिलती-जुलती है अर्थात् संवादयुक्त होती है। प्रतिभाशाली कवियों की उक्तियों में संवाद की बहुलता होती है किन्तु विद्वानों को उन सभी के संवादों में एकरूपता नहीं माननी चाहिए। कहने का भाव यह है कि अच्छे कवियों के काव्यात्मक भाव एक दूसरे से मिलते रहते हैं क्योंकि एक स्तर पर सभी कवियों का हृदयपक्ष एक-दूसरे से मेल खाता है, जिस कारण एक कवि जो सोचता है, कभी-कभी दूसरा कवि भी वही सोचकर लिखता है, फलत: दोनों के भाव सदृश हो जाते हैं। उन पर भावापहरण का दोषारोपण नहीं करना चाहिए।

9.2.8 कारिका 12 की व्याख्या -

कथमिति चेत् –

संवादो ह्यन्यसादृश्यं तत्पुनः प्रतिबिम्बवत्।

आलेख्याकारवत्तुल्यदेहिवच्च शरीरिणाम् ॥ 12 ॥

एकरूपता क्यों नहीं मनानी चाहिए, इसका उत्तर ग्रन्थकार देते हुए अगली कारिका में कहते हैं कि -

यह कैसे अर्थात् (तो कहते हैं)- एक संवाद का दूसरे संवाद से सादृश्य प्रतिबिम्ब तुल्य तथा दूसरे का चित्र के तुल्य तथा तीसरे का दूसरे शरीरध के तुल्य सादृश्य होता है अर्थात् दूसरे के साथ सादृश्य ही संवाद है और वह सादृश्य प्राणियों के प्रतिबिम्ब के समान, चित्राकृति के समान तथा दूसरे देहधारी की तरह होता है।

संवादो हि काव्यार्थस्योच्यते यदन्येन काव्यवस्तुना सादृश्यम्। तत्पुनः शरीरिणां प्रतिबिम्बवदालेख्याकारवत्तुल्यदेहिवच्च त्रिधा व्यवस्थितम्। किञ्चिद्धि काव्यवस्तु वस्त्वन्तरस्य शरीरिणः प्रतिबिम्बकल्पम्, अन्यदालेख्यप्रख्यम्, अन्यत्तुल्येन शरीरिणा सदृशम्।

वह जो काव्यार्थ का संवाद कहते हैं, जो कि अन्य काव्य वस्तु के साथ सादृश्यत्व है फिर भी वह सादृश्य शरीरियों के प्रतिबिम्ब की जैसे, आलेख्य के आकार के जैसे, और तुल्य देही के जैसे; इन तीन प्रकार से व्यवस्थित है। क्योंकि कुछ काव्यवस्तु शरीरी अन्य वस्तु के प्रतिबिम्ब के कल्प (समान) होता है और अन्य तुल्य शरीरी के सदृश होता है।

9.2.9 कारिका 13 की व्याख्या -

तत्र पूर्वमनन्यात्म तुच्छात्म तदनन्तरम्।

तृतीयं तु प्रसिद्धात्म नान्यसाम्यं त्यजेत्कविः ॥ 13 ॥

उस तीन सादृश्यों में से प्रथम सादृश्य प्रतिबिम्बकल्प का दूसरा स्वरूप नहीं होता , दूसरा सादृश्य तुच्छ शरीर वाला हुआ करता है तथा अन्तिम तीसरा सादृश्य प्रसिद्ध स्वरूप वाला होता है। अत: कवि को तीसरे का परित्याग नहीं करना चाहिए। पहले प्रतिबिंब में तुल्य सादृश्य

को अनन्यात्म अर्थात् तात्विक शरीर से युक्त न होने के कारण त्याग देना चाहिए तथा दूसरा चित्र तुल्य सादृश्य तुच्छता युक्त होने के कारण त्याज्य है तथा तीसरे प्रकार का सादृश्य प्रसिद्धात्म स्वरूप से युक्त होने के कारण अपरित्याज्य है।

तत्र पूर्वं प्रतिबिम्बकल्पं काव्यवस्तु परिहर्तव्यं सुमतिना । यतस्तदनन्यात्म तात्त्विकशरीरशून्यम् । तदनन्तरमालेख्यप्रख्यमन्यसाम्यं शरीरान्तरयुक्तमपि तुच्छात्मत्वेन त्यक्तव्यम् । तृतीयं तु विभिन्नकमनीयशरीरसद्भावे सति ससंवादमपि काव्यवस्तु न त्यक्तव्यं कविना। न हि शरीरी शरीरिणान्येन सदृशोऽप्येक एवेति शक्यते वक्तुम् ।

वहाँ पूर्व प्रतिबिम्ब के समान काव्यवस्तु अच्छी मतिवालों के लिये त्याज्य है क्योंकि वह अनन्यरूप अर्थात् तात्विक शरीर से शून्य होता है। उसके बाद का आलेख्य समान अर्थात् अन्य का साम्यवाला अन्य शरीर से युक्त होकर भी तुच्छरूप होने के कारण त्याज्य है किन्तु तृतीय विभिन्न प्रकार के कमनीय शरीर के सदभाव होने पर संवादयुक्त होने पर भी कवि के द्वारा काव्यवस्तु त्याज्य नहीं है। शरीरी अन्य शरीर के सदृश भी होकर एक ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि उत्तरवर्ती कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवि के विचारों या भावों को नहीं लिया है , यह कैसे सुनिश्चित करें । क्या ऐसा हो सकता है कि एक ही बात का विचार दोनों कवियों में निरपेक्ष भाव से हुआ ? इसी प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करती है यह कारिका , जिसमें तीन प्रकार के सादृश्य की चर्चा की गई है । सादृश्य का तात्पर्य भाव , बुद्धि या काव्यवस्तु का सादृश्य अर्थात् एक कवि की बुद्धि का दूसरे कवि की बुद्धि से अथवा एक कवि की कथावस्तु से दूसरे कवि की कथावस्तु का सादृश्य-

प्रतिबिम्बवत् सादृश्य अर्थात् जो काव्यवस्तु पूर्व में अपने स्वरूप को प्राप्त कर चुकी है 1. उसी को लेकर जब दूसरे काव्यग्रन्थ लिखे जाते हैं । इनमे भावों में परिवर्तन नहीं होता केवल पर्यायवाची शब्दों को रखकर पूर्व काव्यवस्तु में काही गई बात को कह दिया जाता है तो पूर्ववर्ती काव्यवस्तु का प्रतिबिम्ब उत्तरवर्ती काव्यवस्तु पर पड़ता है । फलत: उत्तरवर्ती काव्यवस्तु की स्थिति दर्पण में दिखाई देने वाले प्रतिबिम्ब की हो जाती है। इसे ही प्रतिबिम्बकल्प भी कहते हैं। राजशेखर अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यमीमांसा में प्रतिबिम्बकल्प का स्वरूप बताते हुए कहा है कि –

"अर्थ: स एव सर्वो वाक्यान्तरविरचनापरं यत्र ।

तदपरमार्थविभेदं काव्यं प्रतिबिम्बकल्पं स्यात् ।।

अर्थात् जहाँ सभी अर्थ पुराने कवि का ही कहा हो , किन्तु वाक्य रचना दूसरे प्रकार की कर दी जाय तथा उसमें तात्त्विक भेद न हो , उसे प्रतिबिम्बकल्प काव्य कहते हैं ।

सादृश्य काव्य का दूसरा भेद है- आलेख्याकारवत् काव्यरचना अर्थात् जब किसी पदार्थ का चित्र बना दिया जाता है और वह बिल्कुल उसी तरह प्रतीत होता है, जैसे मूल पदार्थ । ठीक उसी प्रकार काव्यवस्तु तो पुरानी ही हो, उसमें कतिपय परिष्कार कर देने से नवीन काव्यरचना प्रतीत होने लगती है तो वह काव्य'आलेख्याकारवत्' कहा जाता है । राजशेखर इस काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं कि –

"कियतापि यत्र संस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नवद्भाति।

तत्कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम्"।।

सादृश्य काव्य का तृतीय भेद है- तुल्यदेहिवत् काव्य अर्थात् जिस प्रकार दो व्यक्ति समान आकृति वाले होते है और दोनों व्यक्तियों को देखकर अभेद-बुद्धि भासित होने लगती है उसी प्रकार भावों के साम्य के कारण दो पद्य एक जैसे प्रतीत होते हैं | उसे ही तुल्यदेहिवत् काव्य कहा जाता है। आचार्य राजशेखर 'तुल्यदेहिवत्' काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं कि -

"विषयस्य यत्र भेदेऽप्यभेदबुद्धिर्नितान्तसादृश्यात्।

तत्तुल्यदेहितुल्यं काव्यं निबध्नन्ति सुधियोऽपि"।।

अर्थात् जहाँ विषय का भेद होते हुए भी अत्यन्त सादृश्य के कारण अभेद बुद्धि का आभास होने लगता है, उसे तुल्यदेहिवत् काव्य

कहते हैं। ऐसे काव्य निबन्धन विद्वान् लोगों के द्वारा भी किया जाता है।

9.2.10 कारिका 14 की व्याख्या -

एतदेवोपपादयितुमुच्यते -

आत्मनोऽन्यस्य सद्भावे पूर्वस्थित्यनुयाय्यपि।

वस्तु भातितरां तन्व्याः शशिच्छायमिवाननम् ॥ 14 ॥

इसी के उपपादन के लिए कहते हैं- अन्य अर्थात् रस रूपी आत्मा की उपस्थिति में तथा प्राचीन कवियों के द्वारा वर्णित पद के अर्थों का वर्णन करने वाला काव्यवस्तु भी चन्द्रमा की कान्ति के सदृश कामिनी के मुख तुल्य सौन्दर्य को प्राप्त करता है।

तत्त्वस्य सारभूतस्यात्मनः सद्भावेऽन्यस्य पूर्वस्थित्यनुयाय्यपि वस्तु भातितराम्। पुराणरमणीयच्छायानुगृहीतं हि वस्तु शरीरवत्परां शोभां पुष्यति। न तु पुनरुक्तत्वेनावभासते। तन्व्याः शशिच्छायमिवाननम्। एवं तावत्संवादानां समुदायरूपाणां वाक्यार्थानां विभक्ताः सीमानः। पदार्थरूपाणां च वस्त्वन्तरसदृशानां काव्यवस्तूनां नास्त्येव दोष इति प्रतिपादयितुमिदमुच्यते-

तत्त्व अर्थात् सारभूत आत्मा के सद्भाव में अन्य की पूर्व स्थिति का अनुसरण करनेवाला भी वस्तु अधिकतर शोभा देता है। प्राचीन रमणीय छाया से अनुगृहीत वस्तु शरीर की जैसे अधिक शोभा का वर्द्धन करती है, न कि पुनरुक्त रूप से अवभासित होती है। जैसे चन्द्रमा की छाया से युक्त तरुणी का मुखमन्डल सुन्दर लगता है। न कि पुनरुक्त सा प्रतीत होता है। तरुणी के चन्द्र छाया के मुख के सदृश। इस प्रकार सम्वाद के सहित समुदायरूप वाक्यार्थों की सीमाएँ विभक्त हैं और पदार्थरूप वस्त्वन्तरसदृश काव्यवस्तुओं का दोष नहीं है। इसी को प्रतिपादन के लिए यह कहते हैं-

9.2.11 कारिका 15 की व्याख्या -

अक्षरादिरचनेव योज्यते यत्र वस्तुरचना पुरातनी।

नूतने स्फुरति काव्यवस्तुनि व्यक्तमेव खलु सा न दुष्यति ॥ 15 ॥

पुरातन कवियों की काव्यवस्तुरचना में अक्षरादि रचना के तुल्य नूतन काव्य वस्तु में अक्षरादि रचना ही स्फुरित होती है। उसमें अर्थात् कवि की रचना में किसी भी प्रकार का दोष व्यक्त नहीं होता है।

न हि वाचस्पतिनाप्यक्षराणि पदानि वा कानिचिदपूर्वाणि घटयितुं शक्यन्ते। तानि तु तान्येवोपनिबद्धानि न काव्यादिषु नवतां विरुध्यन्ति। तथैव पदार्थरूपाणि श्लेषादिमयान्यर्थतत्त्वानि। तस्मात् –

वाचस्पति (कोई कितना भी बड़ा विद्वान् हो) वह कुछ भी अपूर्व अक्षरों अथवा पदों का निर्माण नहीं कर सकता है। उनको तो वे ही उपनिबद्ध होकर काव्य आदि में नवीनता का विरोध नहीं करते हैं। उसी प्रकार पदार्थ रूप श्लेषादिमय अन्य अर्थ तत्त्व भी होते हैं। इसलिए

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्-

स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते।

अर्थात् 'यह कुछ स्फुरित हुआ है' इस प्रकार लोक की बुद्धि जहाँ उत्पन्न होती है, वह चाहे जो हो, रमणीय होता है। कुछ स्फुरित होने का भाव यह है कि जिसको पढ़कर सहृदय चमत्कृत हो जाए अर्थात् सहृदयों की बुद्धि में आस्वाद उत्पन्न हो जाय , आह्लादित होने लगे।

9.2.12 कारिका 16 की व्याख्या -

स्फुरणेयं काचिदिति सहृदयानां चमत्कृतिरुत्पद्यते-

अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्

सुकविरूपनिबध्नन्निद्यतां नोपयाति॥ 16 ॥

यह स्फुरण काचित् सहृदयों की चमत्कृति से उत्पन्न होता है। सहृदयों के बुद्धि में काव्य वस्तु के विषय में नवीनता का चमत्कार उत्पन्न होता है। वह प्राचीन कवियों के सौन्दर्य से तथा व्यङ्ग्य से युक्त काव्य वस्तु वर्णन करने वाला कवि प्राचीन कवियों के छाया अर्थात् सौन्दर्य से

विवक्षित व्यङ्ग्योपेत वाच्यार्थ से युक्त काव्य वस्तु का निबन्धन करने वाला कवि कभी निन्दा को नहीं प्राप्त करता।

तदनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक् तादृक्षं सुकविर्विवक्षितव्यङ्ग्यवाच्यार्थसमर्पणसमर्थशब्दरचनारूपया बन्धच्छाययोपनिबध्नन्निन्द्यतां नैव याति। तदित्थं स्थितम्-

प्रतायन्तां वाचो निमितविविधार्थामृतरसा

न सादः कर्तव्यः कविभिरनवद्ये स्वविषये।

सन्ति नवाः काव्यार्थाः परोपनिबद्धार्थविरचने न कश्चित्कवेर्गुण इति भावयित्वा-

वह पूर्व की छाया के साथ भी वस्तु को वैसे ही सुकवि विवक्षितव्यङ्ग्य और वाच्य अर्थ के समर्पण में समर्थ शब्द की रचना रूप बन्धच्छाया से उपनिबद्धन करता हुआ सुकवि कभी निन्दा का पात्र नहीं बनता है। तो इस प्रकार रहने पर- सुकविजन अमृत रस के तुल्य विविध अर्थोवाली वाणियों का प्रसार करें और कवियों को अनवद्य अपने विषय के प्रति विषाद नहीं करना चाहिए। नवीन अर्थ हैं उसको दूसरे द्वारा उपनिबद्ध अर्थ की रचना में कवि का कोई गुण नहीं ऐसा चिन्तन कर -

9.2.13 कारिका 17 की व्याख्या -

परस्वादानेच्छाविरतमनसो वस्तु सुकवेः।

सरस्वत्येवैषा घटयति यथेष्टं भगवती॥ 17॥

जो कवि मन से दूसरे कवियों द्वारा दिए गए अर्थों को ग्रहण करने की इच्छा नहीं करते हैं, ऐसे कवियों के मन में स्वयं ही वाणी के अधिष्ठात्री माता सरस्वती उसके अभिप्रेत अर्थों को प्रकट कर देती हैं।

परस्वादानेच्छाविरतमनसः सुकवेः सरस्वत्येषा भगवती यथेष्टं घटयति वस्तु। येषां सुकवीनां प्राक्तनपुण्याभ्यासपरिपाकवशेन प्रवृत्तिस्तेषां परोपरचितार्थपरिग्रहनिःस्पृहाणां स्वव्यापारो न क्वचिदुपयुज्यते। सैव भगवती सरस्वती स्वयमभिमतमर्थमाविर्भावयति। एतदेव हि महाकवित्वं महाकवीनामित्योम्।

इत्यक्लिष्टरसाश्रयोचितगुणालङ्कारशोभाभृतो

यस्माद्वस्तु समीहितं सुकृतिभिः सर्वं समासाद्यते।

काव्याख्येऽखिलसौख्यधाम्नि विबुधोद्याने ध्वनिर्दर्शितः

सोऽयं कल्पतरूपमानमहिमा भोग्योऽस्तु भव्यात्मनाम्॥

सत्काव्यतत्त्वनयवर्त्मचिरप्रसुप्तकल्पं मनस्सु परिपक्वधियां यदासीत्।

तद्व्याकरोत्सहृदयोदयलाभहेतोरानन्दवर्धन इति प्रथिताभिधानः॥

परस्वाद की इच्छा से विरत मन वाले अर्थात् दूसरे कवि के अर्थ को न ग्रहण करने की इच्छा वाले ऐसे कवियों में भगवती सरस्वती स्वयं ही उसके अभिप्रेत अर्थों को प्रकट कर देती हैं। इन सुकवियों में पूर्वजन्म के पुण्य तथा अभ्यास के परिपाकवश ही काव्य प्रणयन की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। उन कवियों में दूसरे कवि द्वारा वर्णित अर्थ ग्रहण निःस्पृह होता है। उसमें कोई भी स्वव्यापार की आवश्यकता नहीं होती है। उनके मन में वह भगवती सरस्वती स्वयं ही अभिमत अर्थ का आविर्भाव कर देती हैं। यही महाकवियों का महाकवित्व है। ओम् शब्द यहाँ पर मङ्गलार्थक है। इस प्रकार अकठिन, रस के अवलम्बन से उचित गुण और अलङ्कार की शोभा वाले काव्य उद्यान से सुकृती लोग समस्त सभी वस्तु को प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण सौख्य के धाम काव्य नामक विबुधोद्यान में कल्पतरु के जैसे महिमा वाला वह यह ध्वनि प्रदर्शित किया गया जो सौभाग्यशाली जनों के भोग करने योग्य बने। सत्काव्य के तत्त्व का नीतिमार्ग (ध्वनितत्त्व) जो बुद्धिमानों के मन में दीर्घकाल तक सुप्त कल्प था, उसे आनन्दवर्धन ने (ध्वनि) इस कथित अभिधान से सहृदयजनों के उदयलाभ के लिए आख्यान किया।

इति श्रीराजानकानन्दवर्धनाचार्यविरचिते ध्वन्यालोके चतुर्थ उद्द्योतः।

इस प्रकार श्रीराजानक आनन्दवर्धनाचार्य विरचित ध्वन्यालोक का चतुर्थ उद्योत समाप्त हुआ।

9.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.3.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'संवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्' यह कौन सी कारिका है-
   (क) नौवीं (ख) दशवीं (ग) ग्यारहवीं (घ) बारहवीं
2. ओम् शब्द यहाँ क्या है -
   (क) मङ्गलार्थक (ख) प्रश्नार्थक (ग) काशकृत्स्नार्थक (घ) पच्नार्थक
3. आनन्दवर्धन ने ध्वनि का उदयलाभ किनके लिए किया-
   (क) जिज्ञासुओं के लिए (ख) विद्वानों के लिए (ग) सहृदयों के लिए (घ) मूर्खों के लिए
4. कवियों के मन में अभिप्रेत अर्थ को कौन प्रकट करती हैं –
   (क) भगवती (ख) अभिधा (ग) लक्षणा (घ) व्यञ्जना
5. काव्यार्थ प्रकाशित होता है-
   (क) रसाश्रय से (ख) भावनाश्रय से (ग) शब्दार्थ से (घ) मूलार्थ से
6. "परस्वादानेच्छाविरतमनसो वस्तु सुकवेः" यह कौन सी कारिका है-
   (क) नौवीं (ख) दशवीं (ग) ग्यारहवीं (घ) सत्रहवीं
7. आनन्दर्धन को कहा जाता है-
   (क) राजा (ख) राजन् (ग) राजानक (घ) प्रजा
8. विद्वानों के मन में दीर्घकाल तक सुप्त था-
   (क) अभिधा (ख) लक्षणातत्त्व (ग) ध्वनितत्त्व (घ) अलङ्कार
9. सामान्य रूप से वाच्य है -
   (क) रस (ख) लक्ष्यार्थ (ग) वस्तु (घ) व्यञ्जना
10. कल्पतरू के समान क्या है -
    (क) अभिधा (ख) लक्षणा (ग) व्यञ्जना (घ) ध्वनि

9.3.2 लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कारिका 07 की व्याख्या कीजिए।
2. कारिका 10 की व्याख्या कीजिए।
3. कारिका 12 की व्याख्या कीजिए।
4. कारिका 15 की व्याख्या कीजिए।
5. कारिका 17 की व्याख्या कीजिए।

9.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. महाकवियों के महाकवित्व का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. कविप्रतिभा को व्याख्यायित कीजिए।
3. आनन्दवर्धन के प्रतिपाद्य का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
4. चतुर्थ उद्योत में प्रदत्त उदाहरणों की समीक्षा कीजिए।
5. अवस्थाभेद से वर्णनभेद कैसे हो जाता है? इसका विश्लेषण कीजिए।

इकाई 10 – आलोचनात्मक प्रश्न

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 आलोचनात्मक प्रश्न

10.2.1 अति लघुउत्तरीय प्रश्न एवं उनके उत्तर

10.2.2 लघुउत्तरीय प्रश्न एवं उनके उत्तर

10.2.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न एवं उनके उत्तर

10.2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से सम्बन्धित विषयों का अवबोध कर सकेंगे-

- काव्यशास्त्र विषयक प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ होंगे।
- साहित्यशास्त्र विषयक प्रश्नों द्वारा रचनात्मकता का विकास होगा।
- स्व शब्दावली गठन में महती भूमिका होगी।
- भाषा शैली का विकास होगा।
- चिन्तन क्षमता का विकास होगा।
- पूर्वाग्रह से ग्रसित होने से बचेंगे।
- शास्त्रीय सिद्धान्तों की आलोचना कर सकेंगे।
- अति-लघु-उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेगें।
- लघु-उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।
- दीर्घ-उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इस दसवीं इकाई में आलोचनात्मक प्रश्नों एवं उत्तरों का संयोजन किया गया है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम अति लघुउत्तरीय प्रश्नों एवं उनके उत्तरों को सम्मिलित किया गया है। तत्पश्चात् लघु उत्तरीय प्रश्नों एवं उनके उत्तरों की व्याख्या को सम्मिलित किया गया है। अन्त में दीर्घउतरीय प्रश्नों एवं उनके उत्तरों का वर्णन किया गया है। इन प्रश्नों के आधार पर शिक्षार्थी अति लघु उत्तरीय, लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों तथा उनके उत्तरों के आधार पर अपने प्रश्नों एवं उनका उत्तर दे सकते है।

10. 2 आलोचनात्मक प्रश्न

10.2.1 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ध्वन्यालोक के रचयिता कौन हैं - आचार्य आनन्दवर्धन

2. ध्वन्यालोक की लोचन टीका के प्रणेता कौन हैं - आचार्य अभिनवगुप्त

3. षट् सम्प्रदायों के अन्तर्गत कौन-कौन आते हैं –

(1) अलङ्कार सम्प्रदाय

(2) रस सम्प्रदाय

(3) ध्वनि सम्प्रदाय

(4) औचित्य सम्प्रदाय

(5) रीति सम्प्रदाय

(6) वक्रोक्ति सम्प्रदाय

4. आचार्य आनन्दवर्धन के मत में काव्य की आत्मा है - ध्वनि

5. काव्यमीमांसा के प्रणेता कौन है – राजशेखर

6. काव्य की चतुर्धा शक्तियों के अभिधान क्या हैं ?

(1) अभिधा

(2) लक्षणा

(3) व्यञ्जना

(4) तात्पर्या

7. आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनि के वर्णन का क्या उद्देश्य है?

सहृदयमनःप्रीतये अर्थात् सहृदयों के मन की प्रसन्नता के लिए ध्वनि के स्वरूप को व्याख्यायित किया है एवं सहृदयोदयलाभहेतोः अर्थात् सहृदयों के उदयलाभ के लिए भी ध्वनि का स्वरूप व्याख्यायित किया गया है।

8. काव्यशास्त्र के विविध नाम बताईये –

काव्यशास्त्र के विविध नाम हैं- उनमें काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, यायावरीविद्या, काव्यमीमांसा, काव्यालोचन, काव्यप्रकाश एवं क्रियाकल्प, साहित्यविद्या, साहित्यदर्पण, अलङ्कारसङ्ग्रह आदि प्रसिद्ध हैं।

9. ध्वन्यालोक में प्रसङ्गवश वर्णित दो ऋषियों के नाम बताईये-

शोकः श्लोकत्वमागतः में प्रसङ्गवश महर्षि वाल्मीकि का वर्णन है तथा मुनिर्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसम्भवः ।

येनैकचुलके दृष्टौ तौ दिव्यौ मत्स्यकच्छपौ ॥

इस श्लोक में कुम्भसम्भव महर्षि अगस्त्य का प्रसङ्गवश वर्णन है।

10. काव्य का क्या महत्त्व है ?

काव्य न केवल मनोरंजन का विषय है अपितु धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का साधक है। यह कान्तासम्मित उपदेश के सदृश मधुर औषधि का कार्य करता है। जीवन में यदि काव्यत्व नहीं है तो वह जीवन शुष्क एवं निरस है।

10.3.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. सहृदय की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर – आचार्य आनन्दवर्धन मङ्गलाचरण के पश्चात् ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की प्रथम कारिका में ही सहृदय पद का वर्णन करते हुए कहते

हैं-

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।

केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्

तेन ब्रूम:सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्॥ ध्वन्यालोक 1/1

अर्थात् अतः सहृदयजनों के मन की प्रसन्नता के लिए उस ध्वनि के स्वरूप को हम कहते हैं। यहाँ इनका उद्देश्य स्पष्ट है कि जो सहृदय होगा, उसी के आह्लादकत्व के लिए हम यह कार्य कर रहे हैं। चतुर्थ उद्योत के अन्तिम पद्य में आचार्य आनन्दवर्धन ने सहृदयत्व के विषय में कहा है-

सत्काव्यतत्त्वनयवर्त्मचिरप्रसुप्त कल्पं मनस्सु परिपक्वधियां यदासीत्।

तद्व्याकरोत्सहृदयोदयलाभहेतो-रानन्दवर्धन इति प्रथिताभिधानः॥

ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, अन्तिम पद्य

अर्थात् सत्काव्य के तत्त्व का नीतिमार्ग (ध्वनितत्त्व) जो बुद्धिमानों के मन में दीर्घकाल तक सुप्त कल्प था, उसे आनन्दवर्धन ने (ध्वनि) इस कथित अभिधान से सहृदयजनों के उदयलाभ के लिए आख्यान किया।

इसी तथ्य को आचार्य अभिनवगुप्त व्याख्यायित करते हुए कहते हैं।आचार्य अभिनवगुप्त आचार्य आनन्दवर्धन विरचित ध्वन्यालोक की लोचन टीका के टीकाकार हैं। वे अपनी लोचन टीका में सहृदय का लक्षण देते हुए कहते हैं- **"येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः"।** ध्वन्यालोक, लोचन टीका

अर्थात् जिनका काव्य के अनुशीलन का अभ्यास निरन्तर करने से विशाल हृदय हो गया है और ऐसे विशाल हृदय दर्पण में जो वर्णन करने योग्य तन्मयीभवनयोग्यता का विकास हो गया है ऐसे अपने हृदय से संवाद स्थापित करने वाले सहृदय हैं। प्रत्येक व्यक्ति वाच्य अर्थ को शब्द अर्थ के नियमों के ज्ञानमात्र के अथवा व्याकरण तथा कोशादि के ज्ञान रखने से जान सकता है और व्यङ्ग्यार्थ केवल काव्य के तत्त्वज्ञ अर्थात् सहृदय लोग ही जान सकते हैं। इसी को आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं –

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।

वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्॥ ध्वन्यालोक, 1/7

वह व्यङ्ग्यार्थ व्याकरणादि एवं कोशादि के ज्ञानमात्र से ही प्रतीत नहीं होता, अपितु वह तो काव्य के जानने वालों या काव्यानुशीलन करने वालों, काव्य के तत्त्वज्ञ अर्थात् सहृदय लोगों को ही विदित होता है।

प्रश्न 2. मेधाविरुद्र का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर - मेधाविरुद्र प्रसिद्ध काव्य शास्त्रीय आचार्य हैं। इनका एक अन्य नाम मेधावी भी है। इन्होंने उपमा आदि के दोषों के विवेचन का सिद्धान्त दिया है। इन्होंने उपमा के सात प्रकार के दोष माने हैं-

१. हीनता

२. असंभव

३. लिंगभेद

४. वचनभेद

५. विपर्यय

६. उपमानाधिक्य

७. उपमानसादृश्य

इनके जिस सिद्धान्त की चर्चा उत्तरवर्ती साहित्य में पाई जाती है, वह है शब्दों का चतुर्धा विभाजन। मेधाविरुद्र ने कर्मप्रवचनीय को छोड़कर नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात ये चार ही विभाग किये हैं। परंतु दुर्भाग्य से इनके द्वारा रचित न ही काव्यशास्त्र पर और न ही अलङ्कार शास्त्र पर लिखा गया कोई ग्रन्थ उपलब्ध होता है। अन्य आचार्यों ने इनके विषय में जो लिखा है उन्हीं के आधार पर इनके सिद्धान्तों की परिचर्चा की जाती है।

प्रश्न 3. रस-सम्प्रदाय का निरूपण कीजिए ?

उत्तर – नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रमुख तत्त्व के रूप में रस की गणना की जाती है। राजशेखर के अनुसार नन्दिकेश्वर ने ब्रह्मा से उपदेश पाकर सर्वप्रथम रस के निरूपण का सिद्धान्त दिया किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। रस सिद्धान्त या रस सम्प्रदाय का सर्वप्रथम उल्लेख भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही प्राप्त होता है और आचार्य भरत इसके प्रथम और सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं। नाट्यशास्त्र के षष्ठ तथा सप्तम अध्याय में रस और भाव का जो निरूपण प्रस्तुत है, वह साहित्य संसार में एक अपूर्व वस्तु के रूप में विख्यात है। भरत मुनि के काल में नाट्य रस का विस्तृत, व्यापक और सम्पूर्ण रूप से उत्पत्ति प्राप्त होती है। रस सम्प्रदाय का मूलभूत सूत्र है- 'विभावानुभावसंचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्ति:' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति या उत्पत्ति होती है। भरत मुनि के इस रस सूत्र पर चार आचार्यों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। जिनके नाम एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

१. भट्टलोल्लट - उत्पत्तिवाद

२. भट्टशङ्कुक - अनुमितिवाद

३. भट्टनायक - भुक्तिवाद

४. अभिनवगुप्त - अभिव्यक्तिवाद

भट्टलोल्लट उत्पत्तिवादी आचार्य हैं, ये रस को विभावादि का कार्य मानते हैं। शंकुक अनुमितिवादी आचार्य हैं, ये विभावादि के द्वारा रस की अनुमिति मानते हैं और विभावादि और रस में अनुमाप्य-अनुमापक भाव सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। भट्टनायक भुक्तिवादी आचार्य हैं उनके अनुसार विभावादि का रस के साथ भोज्य-भोजक भाव सम्बन्ध होता है, जिसकी सिद्धि के लिए उन्होंने अभिधा के अतिरिक्त भावकत्व एवं भोजकत्व नामक दो व्यापारों को स्वीकार किया है। अभिनवगुप्त अभिव्यक्तिवादी आचार्य हैं, उन्होंने रस को मनोवैज्ञानिक तरीके से व्याख्यायित करते हुए कहा है कि समस्त स्थायीभाव वासनारूप में सहृदयों के हृदय में विद्यमान रहते हैं। विभावादिकों के द्वारा ही यह सुप्त स्थायीभाव अभिव्यक्त होकर आनन्दमय रस को प्राप्त कर लेते हैं।

रस की संख्या के सन्दर्भ में आलङ्कारिक आचार्यों में मतभेद है। आचार्य भरत ने 8 रस माना है-

1) श्रृङ्गार

2) हास्य

3) करुण

4) रौद्र

5) वीर

6) भयानक

7) वीभत्स

8) अद्भुत

आचार्य भरत और धनञ्जय ने नाटक में शान्त रस की स्थिति को स्पष्टतया सङ्केत नहीं किया है। 'शममपि केचित् प्राहु: पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य' (दशरूपक ४/३५) रुद्रट ने प्रेयान् को भी रस की संज्ञा प्रदान की है। लौकिक संस्कृत का प्रथम श्लोक जो क्रौञ्चवध से मर्माहत होकर महर्षि वाल्मीकि को स्फुरित हुआ, वह रसमय ही था। रस को सम्भवतः सभी आचार्यों तथा संप्रदायों ने अपने सिद्धान्तों के बाद स्वीकार किया

ही है।

10.3.3 दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. काव्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर - कविकर्म को शास्त्रीयरूपता प्रदान करनेवाली धारा का नाम काव्यशास्त्र है। यह उपस्थित, अनुपस्थित और अनुपलब्ध सामग्री को भी कविचातुर्य से सरस रूप देकर आह्लादक बना देता है। विद्वानों ने कवि के प्रत्येक कर्म को काव्य नहीं माना है अपितु कवि की रचनाधर्मिता को ही काव्य की श्रेणी में रखा है। कवि की रचनाधर्मिता के द्वारा उद्भूत काव्य (जिसे लक्ष्य-ग्रन्थ कहा जाता है) के आधार पर जो उसका अनुशासन बनाया जाता है, वह काव्यशास्त्र के रूप में अभिधेय और ज्ञेय होता है। काव्यानुशासन के निर्माताओं के द्वारा काव्य में वर्णित विविध सामग्रियों द्वारा तत्विषयक ऊह करके काव्यशास्त्रीय तात्त्विक वस्तुओं का वर्णन किया जाता है। जिसका अध्ययन करके नवीन कवि अपने काव्य को निर्दुष्ट (अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असम्भव दोषों से रहित) बना सकता है। साथ ही सहृदय को बिना किसी बाधा के रसानन्द की प्राप्ति कराता है। काव्यशास्त्र के अध्ययन के बिना हमें किसी भी काव्य अथवा कवि के गुण-दोषों का पता नहीं चल सकता है और काव्यानन्द की अनुभूति भी नहीं हो सकती है। अतः काव्य के मर्म का अवबोध करने के लिए काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। इसका अपर अभिधान साहित्यशास्त्र है। साहित्यशास्त्र के विषय में कहा गया है - हितेन सह सहितम् सहितस्य भावः साहित्यम् अर्थात् जो हित के साथ होता है वह सहित कहलाता है और ऐसे सहित के भाव को साहित्य अभिधान से जाना जाता है। हितकारक भावों को शास्त्रीयरूपता प्रदान करने की विधि का व्याख्यान किया जाता है, जिसे साहित्यशास्त्र कहा जाता है-

साहित्यशास्त्रं सकलं यस्मादाविरभूदिह।

साहित्यरूपिणं वन्दे पार्वतीपरमेश्वरम्॥[24]

अर्थात् साहित्यशास्त्र से सबकुछ आविर्भूत है। ऐसे पार्वतीपरमेश्वर (वागर्थरूप) साहित्यरूप को नमस्कार है।

वैदिक संहिताओं की प्राचीनता के कारण भारतीय साहित्य-चिन्तन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यह परम्परा केवल भारतवर्ष की ही नहीं अपितु विश्व की प्राचीनतम धरोहर के रूप में विख्यात है। इस परम्परा में काव्यशास्त्र का इतिहास साहित्य-चिन्तन का विकसित रूप है। अद्यावधि प्राप्त काव्यशास्त्रीय विशिष्ट ग्रन्थ एवं उनके प्रणेता निम्नलिखित हैं - नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, अग्निपुराण : (काव्यशास्त्रीय विशिष्ट अंश (मात्र) ही काव्य के लिए उपयोगी है।), काव्यालङ्कार : भामह , काव्यादर्श : दण्डी, अलङ्कारसारसंग्रह : उद्भट, काव्यालङ्कारसूत्र : वामन , काव्यालङ्कार : रुद्रट, ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन, काव्यमीमांसा : राजशेखर, अभिधावृत्तिमातृका : मुकुलभट्ट, काव्यकौतुक : भट्टतौत, हृदयदर्पण : भट्टनायक, वक्रोक्तिजीवित : कुन्तक, ध्वन्यालोकलोचनटीका तथा नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती : अभिनवगुप्त, दशरूपक : धनञ्जय, व्यक्तिविवेक : महिमभट्ट, सरस्वतीकण्ठाभरण : भोज, औचित्यविचारचर्चा : क्षेमेन्द्र, अलङ्कारसर्वस्व : रूय्यक, वाग्भटालङ्कार : वाग्भट, काव्यानुशासनम् : हेमचन्द्र, चन्द्रलोक : जयदेव, एकावली : विद्याधर, प्रतापरुद्रयशोभूषणम् : विद्यानाथ, काव्यप्रकाश : मम्मट, नाट्य-दर्पण : रामचन्द्र, भावप्रकाश : शारदातनय, साहित्य-दर्पण : विश्वनाथ, रसमञ्जरी : भानुदत्त, उज्ज्वलनीलमणि : रूप गोस्वामी, अलङ्कारशेखर : केशवमिश्र, कुवलयानन्द : अप्पय दीक्षित, रसगङ्गाधर : पण्डितराज जगन्नाथ इत्यादि। इन संस्कृत काव्यशास्त्रों के आधार पर काव्य के विविध स्वरूपों का विधान किया गया है। इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से काव्य के गुण और दोष आदि का निर्धारण हुआ है। इस प्रकार उपर्युक्त संस्कृत काव्यशास्त्रों में प्रायः काव्य के दशाङ्गों का निरूपण किया गया है :- काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु, काव्य-भेद, शब्द-शक्ति विवेचन, ध्वनि, रस, अलङ्कार, गुण, दोष।

इन दश काव्यीय तत्त्वों की विस्तृत सीमा में काव्यालोचन के सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्न समाहित हो जाते हैं। इन तत्त्वों का आधार लक्ष्य ग्रन्थ होते हैं। लक्ष्य ग्रन्थों को आधार बनाकर ही लक्षण ग्रन्थों का निर्माण हो, यही काव्यशास्त्रीय परम्परा भी रही है। काव्यशास्त्र के प्रमुख तत्त्वों की शास्त्रीय व्याख्या के लिए लक्षण-ग्रन्थों के आद्य प्रमुख आधार रामायण और महाभारत ही थें, जिनका अवलम्बन कर प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई।

प्रश्न 2. वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - शब्दशक्तियों को मुख्यतः त्रिविध माना गया है- अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। इनसे प्रकटित होनेवाले अर्थ को अभिधार्थ, लक्ष्यार्थ एवं

[24] काव्यसिद्धान्तकौमुदी, १/१

व्यङ्ग्यार्थ कहा जाता है। अभिधार्थ को ही वाच्यार्थ कहा जाता है। इस प्रकार इन त्रिविध शक्तियों से अभिव्यक्त होने वाले अर्थों में भी भिन्नता है। ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ने वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ के अन्तर में किया है-

(1) स्वरूपभेद – स्वरूपभेद के कारण वाच्य एवं व्यङ्ग्य का भेद हो जाता है क्योंकि-

(क) कहीं वाच्य विधिरूप है तो व्यङ्ग्य निषेधरूप होता है। यथा -

भम धम्मिअ वीसत्थो सो सुनओ अज्ज मारिओ देण ।

गोलाणइकच्छकुडंगवासिणा दरिअसीहेण ॥ ॥

[भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।

''गोदानदीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन ॥ इतिच्छाया]

जैसे- हे धार्मिक! आप यहाँ बिना किसी भय के भ्रमण करें, आज गोदावरी नदी के तट के समीप कुञ्ज में रहने वाले सिंह के द्वारा आपके भय का कारण बने हुए उस कुत्ते को मार दिया गया है। यहाँ पर वाच्यार्थ निडर भ्रमण करना विधिरूप तो है। परन्तु नरभक्षी सिंह के आ जाने के कारण इसका व्यङ्ग्यार्थ निषेधरूप है।

(ख) कहीं वाच्यार्थ के प्रतिषेध रूप होने से व्यङ्ग्यार्थ विधि रूप हो जाता है। यथा –

अत्ता एत्थ णिमज्जइ एत्थ अहं दिअसअं पलोएहि ।

मा पहिअ रत्तिअन्धअ सेज्जाए मह णिमज्जहिसि ।।

[श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय ।

मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमंक्ष्यसि ॥ इति च्छाया]

जैसे - हे रात्र्यन्ध अर्थात् रतौधीं रोग से ग्रस्त या रात में न देखने वाले पथिक! इस शयन कक्ष का दिवस में ही सावधानीपूर्वक अवलोकन कर लो, उस ओर मेरी सास शयन करती है और इस ओर मैं, इसलिए तुम असावधानीवश मेरी शय्या पर मत गिर जाना। यहाँ पर वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ की स्पष्टतया भिन्नता प्रतीत होती है।

(ग) कहीं पर वाच्यार्थ विधिरूप होने पर भी उसका व्यङ्ग्यार्थ विधि रूप तथा प्रतिषेध रूप दोनों में ही नहीं रहता। यथा -

बच्च मह व्विअ एक्केइ होन्तु णीसासरोइअव्वाइ ।

मा तुज्झ वि तीअ विणा दक्खिण्णहअस्स जाअन्तु ॥

[व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निःश्वासरोदितव्यानि ।

मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत ॥ इति च्छाया]

जैसे - तुम यहाँ से प्रस्थान करो, मैं अकेली ही इस निःश्वास और रुदन की पीड़ा को सहन कर लूंगी। कहीं तुम्हें भी दाक्षिण्य के कारण वह सब कष्ट सहन न कर पड़ जाये। यहाँ पर व्रज का वाच्यार्थ विधिरूप तो है परन्तु व्यङ्ग्यार्थ विधि तथा प्रतिषेध रूप दोनों से भिन्न अनुभयात्मक रूप है।

(घ) कहीं पर वाच्यार्थ के प्रतिषेध रूप में रहने पर भी व्यङ्ग्यार्थ विधि तथा प्रतिषेध रूप में नहीं रहता है। यथा -

दे आ पसिअ णिवत्तसु मुहससिजोह्णाविलुत्ततमणिवहे ।

अहिसारिआण विग्धं करोसि अण्णाण वि हआसे ।।

[प्रार्थये तावत् प्रसीद निवर्तस्व मुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे ।

अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासामपि हताशे ॥ इति च्छाया]

जैसे - अरी हताशे ! मेरी तुमसे प्रार्थना है कि प्रसन्न हो जाओ और वापस आ जाओ क्यों तुम अपनी चन्द्र तुल्य मुख की चाँदनी से इस

गहन अन्धकार को दूर करके अन्य अभिसारिकाओं के कार्य के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रही हो। यहाँ पर वाच्यार्थ प्रतिषेध रूप तो है परन्तु प्रियतम की चाटुकारिता ही विशेष रूप से प्रतीयमान है जो कि विधिरूप और प्रतिषेध रूप से भिन्न अनुभयात्मक है।

(2) विषयभेद – वाच्य अर्थ का विषय व्यक्तिगत होता है तो व्यङ्ग्य अर्थ का विषय उससे भिन्न व्यक्ति होता है।

कस्स वा ण होइ रोसो दट्ठुण पियाएँ सव्वणं अहुरम् ।

सभमरप उमग्घाइणि वारिअवामे सहसु एह्णिम् ॥

कस्य वा न भवति रोषो दृष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम् ।

सभ्रमरपद्माघ्राणशीले वारितवामे सहस्वेदानीम् ॥

अर्थात् प्रिया के अन्य निमित्तक सव्रण अधर को देखकर किसको क्रोध नहीं आता। मना करने पर भी न मानकर भ्रमरसहित कमल को सूंघनेवाली तू अब उसका फल भोग। यहाँ वाच्यार्थ का विषय तो अविनीता है परन्तु उसका व्यङ्ग्य अर्थ है कि उसका व्रण परपुरुष जन्य नहीं अपितु भ्रमरदशनजन्य है, अतः इसका अपराध नहीं है। इस व्यङ्ग्य का विषय नायक है। इसलिए यहाँ वाच्य और व्यङ्ग्य का विषयभेद होने से व्यङ्यार्थ वाच्यार्थ से भिन्न है।

रसध्वनि रसादि रूप वाच्य की सामर्थ्य से आक्षिप्त होकर प्रकाशित होता है, वह अभिधा,लक्षणा, तात्पर्या शक्तिव्यापार का विषय नहीं होता, इसलिए वाच्यार्थ से भिन्न है। क्योंकि उसे वाच्य माना जाय तो उसकी वाच्यता दो प्रकार से मानी जाती है या तो स्वशब्द से हो सकती है या तो विभावादि प्रतिपादन द्वारा। पहले पक्ष में जहाँ रस शब्द अथवा श्रृङ्गारादि शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है परन्तु विभावादि का प्रतिपादन किया गया है। केवल श्रृङ्गारादि शब्द होने पर तथा विभावादि के प्रतिपादन से रहित काव्य तनिक भी रसयुक्त नहीं प्रतीत होता है । क्योंकि रसादि के अभिधान से रहित भी मात्र विभावादि से विशिष्ट रसादि की प्रतीति होती है तथा विभावादि से रहित रसादि मात्र शब्दों के प्रयोग से रस की प्रतीति नहीं होती है । इसलिए अन्वय तथा व्यतिरेक से यह अर्थ सिद्ध हो जाता है कि रसादि अर्थ के सामर्थ्य से आक्षिप्त होता है । वह किसी भी प्रकार से अभिधेय नहीं होता है । इस प्रकार ध्वनि का तीसरा प्रभेद रसादि ध्वनि वाच्यार्थ से भिन्न ही होता है । वाच्यार्थ के साथ के समान ही इसकी प्रतीति होती है।

(3) भिन्नसामग्रीवेद्यत्व (निमित्तभेद)- प्रत्येक व्यक्ति वाच्य अर्थ को शब्द अर्थ के नियमों के ज्ञानमात्र के अथवा व्याकरण तथा कोशादि के ज्ञान रखने से जान सकता है और व्यङ्ग्यार्थ केवल काव्य के तत्त्वज्ञ अर्थात् सहृदय लोग ही जान सकते हैं। इसी को आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं –

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।

वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥ ध्वन्यालोक, 1/7

वह व्यङ्ग्यार्थ व्याकरणादि एवं कोशादि के ज्ञानमात्र से ही प्रतीत नहीं होता, अपितु वह तो काव्य के जानने वालों या काव्यानुशीलन करने वालों, काव्य के तत्त्वज्ञ अर्थात् सहृदय लोगों को ही विदित होता है।

(4) संख्याभेद- वाच्यार्थ सभी व्यक्तियों के प्रति एकरूपता के कारण निश्चित है किन्तु व्यङ्यार्थ में नानाविद्यत्व होता है। अतः वह अनिश्चित होता है। अतः यह वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ में संख्याभेदत्व है।

(5) कालभेद- वाच्यार्थ के ज्ञान के पश्चात् ही व्यङ्ग्यार्थ का अवबोध होता है। अतः वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ में कालभेदत्व भी है।

(6) आश्रयभेद – वाच्यार्थ केवल शब्द पर आश्रित है, जबकि व्यङ्ग्यार्थ शब्द, शब्द के एकदेशत्व, उसके अर्थ, वर्ण संघटना आदि पर आश्रित है। अतः वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ में आश्रयभेदत्व भी है।

(7) कार्यभेद – वाच्यार्थ का कार्य प्रतीतिमात्र है और व्यङ्ग्य का कार्य चमत्कृति है। अतः वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ में कार्यभेदत्व है।

(8) बोद्धृभेद – वाच्यार्थ केवल अभिधार्थ का बोध कराता है, जबकि व्यङ्ग्य अर्थ से भिन्नार्थ का भी अवबोध करा देता है। अतः वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ में बोद्धृभेदत्व भी है।

वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ के सभी हेतुओं को साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने एक कारिका में उपनिबद्ध कर दिया है-

बोद्धृस्वरूपसंख्यानिमित्तकार्यप्रतीतिकालानाम्।

आश्रयविषयादीनां भेदाद् भिन्नोऽभिधीयते व्यङ्ग्यः॥

अर्थात् बोद्धृभेद, स्वरूपभेद, संख्याभेद, निमित्तभेद, कार्यभेद, प्रतीतिभेद, कालभेद, आश्रयभेद और विषयभेद से भी वाच्य एवं व्यङ्ग्य की भिन्नता है।

प्रश्न 3 – ध्वन्यालोक के प्रथम कारिका की व्याख्या कीजिए ?

उत्तर - आचार्य आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण के पश्चात् प्रथम कारिका में कहते हैं-

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नात्पूर्व-

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।

केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्

तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम् ॥ ध्वन्यालोक, 1/1

अर्थात् परमेश्वर के नमस्कार से धन्य होकर व्याख्याता और श्रोताओं के बिना किसी विघ्न की अभीष्ट व्याख्या के श्रवण रूप फल संपत्ति के लिए समुचित आशीर्वाद की प्राप्ति द्वारा उसका तत्त्व का प्रकटन करते हैं और कहते हैं कि वह तीनों मतों को सद्बुद्धि प्रदान करें। काव्य के तत्वज्ञ अर्थात् बुद्धजन लोगों ने काव्य की आत्मा ध्वनि को माना है जिस परम्परा से पूर्व में ही अच्छी प्रकार से प्रगति किया गया था, सहृदयजनों के मन में प्रकाशमान होते हुए भी उसे अन्य लोग ध्वनि का अभाव कहते हैं। उसके अभाव के विकल्प संभव है। प्रबुद्धजनों ने काव्य की आत्मा को ध्वनि माना है, दूसरे लोगों ने उस तत्त्व को अभाव कहा है। अन्य लोगों ने उसे भाक्त कहा है। कुछ लोगों ने उस तत्त्व को वाणी द्वारा अगोचर कहा है। अतः सहृदयजनों के मन की प्रसन्नता के लिए उस ध्वनि के स्वरूप को हम कहते हैं। इसकी वृत्ति में कहा गया है कि काव्यमर्मज्ञों ने काव्य के आधार भूत जिस तत्त्व को ध्वनि यह नाम दिया है, परम्परा से जिसको प्रकाशित किया है,सहृदयों के चित्त में प्रकाशित उस चमत्कारजनक ध्वनि तत्त्व का कुछ लोग अभाव मानते हैं। उन अभावादियों के निम्नलिखित विकल्प है - अभाववादियों में अलङ्कार शास्त्र के आचार्यों का नाम आता है वे कहते हैं कि ध्वनि को आप काव्य की आत्मा (सौन्दर्य) मानते हैं -पर काव्य शब्द और अर्थ का सम्बद्ध शरीर हैं।स्वयं शब्द और अर्थ तो ध्वनि हो नहीं सकते। यदि उनके सौन्दर्य अथवा चारुत्व को आप ध्वनि मानते हैं तो वह पुनरावृत्तिमात्र है, क्यों कि शब्द और अर्थ के चारुत्व के तो सभी प्रकारों का विवेचन किया जा चुका है। काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ का चारुत्व दो प्रकार से सम्भव है एक स्वरूपगत और दूसरा संगठनागत। शब्द का स्वरूपगत चारुत्व अनुप्रासादि अलङ्कारों द्वारा सम्भव है और अर्थ का स्वरूपगत चारुत्व उपमादि अलङ्कारों के रूप में प्रसिद्ध है। संघटनागत चारुत्व में वर्णसंघटना के धर्म माधुर्यादि गुणों के रूप में प्रकट होता है। गुणों से अतिरिक्त उपनागरिका आदि वृत्तियां तथा वैदर्भी आदि रीतियाँ ही प्रसिद्ध हैं। अतः इन सबसे भिन्न ध्वनि नाम का कौन सा नया तत्त्व है। कुछ अभाववादी कहते हैं कि ध्वनि है ही नहीं- नास्त्येव ध्वनि। परम्परागत मार्ग का अतिक्रमण करने वाले किसी नवीन चारुत्व को स्वीकार करने में काव्यत्व की हानि होगी।

अभाववादियों में तीसरे कहते हैं कि ध्वनि नाम का कोई अपूर्व पदार्थ सम्भव ही नहीं है - न सम्भवत्येव ध्वनिर्नामापूर्व कश्चित्।

और कथन शैलियों के बहुत से प्रकार होने से प्रसिद्ध काव्यलक्षणकारों द्वारा अप्रदर्शित कोई छोटा प्रकार सम्भव भी है तब भी ध्वनि ध्वनि कहकर नर्तन किया जा रहा है उसका कोई उचित कारण प्रतीत नहीं होता है।

इसलिए ध्वनि एक प्रवादमात्र है, जिसका विचार योग्य तत्त्व कुछ भी नहीं बताया जा सकता है।इसी आशय से ध्वन्यालोककार ने एक श्लोक कहा है -जिसमें अलङ्कारयुक्त, इसलिए मन को आह्लादित करने वाले कोई वर्णनीय अर्थतत्त्व नहीं है इससे अर्थालङ्कार के अभाव की सूचना मिलती है, जो काव्य चातुर्य से युक्त सुन्दर शब्दों से विरचित नहीं हुआ है उसमें शब्दालङ्कार के अभाव की सूचना मिलती है, जिसमें सूक्तियाँ शून्य होती हैं, उनमें गुणों का अभाव होता है, इस प्रकार जो शब्द के चारुत्वहेतु उपमादि अलङ्कारों एवं अनुप्रासादि तथा शब्दार्थसंघटना, माधुर्यादि गुणों से शून्य है उसको ध्वनि से युक्त उत्तम काव्य कहकर प्रीतिपूर्वक प्रशंसा करने वाला मूर्ख, किसी विद्वान् से पूछने पर ध्वनि का क्या स्वरूप बतायेगा?

भाक्तवाद में प्रयुक्त भक्ति शब्द का अर्थ भाक्त अर्थात् लक्षणा से है। भाक्तवादियों के अनुसार ध्वनि पदार्थ का लक्षणा में ही अन्तर्भाव

कर लेना चाहिए। कुछ प्रगल्भमति वाले ऐसे है जो ध्वनि को स्वीकार करते हुए भी उसे अलक्षणीय, अनिर्वचनीय अथवा वाणी से परे केवल सहृदयसंवेद्य ही मानना चाहिए।

इस प्रकार काव्य के सभी भेदों में जो व्यङ्ग्यार्थ की स्फुट प्रतीति होती है वही ध्वनि का पूर्ण लक्षण है-

सर्वेष्येव प्रभेदेषु स्फुटत्वेनावभासनम्।

यत् व्यङ्ग्यस्याङ्गिभूतस्य तत्पूर्णं ध्वनिर्लक्षणम् ।।

उस ध्वनि के स्वरूप समस्त महाकवियों के काव्यों का परम् रहस्यभूत, अत्यन्त प्राचीन काव्यलक्षणकारों की सूक्ष्म बुद्धि से उत्पन्न नहीं हुआ है। इसलिए रामायण, महाभारत आदि लक्ष्य ग्रन्थों में सभी उसके प्रसिद्ध व्यवहार को परिलक्षित करने वाले सहृदयों के मन में आनन्द प्रतिष्ठा को प्राप्त करे, इसलिए उसको प्रकाशित किया जाता है।

इस कारिका में मन्दाक्रान्ता छन्द है, जिसका लक्षण है –

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मोभनौतौग्युग्मम् अर्थात् मन्दाक्रान्ता छन्द के एक चरण में कुल सत्रह वर्ण होते हैं तथा चतुर्थ वर्ण, षष्ठ वर्ण एवं सप्तम वर्णों पर यति होती है।

10.2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न -

1. काव्यशास्त्र के अर्थ को बताते हुए काव्य में शास्त्र शब्द का अर्थ तथा काव्यशास्त्र के विविध अभिधानों पर प्रकाश डालिए।
2. काव्यशास्त्र के संप्रदायों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. कविप्रतिभा को व्याख्यायित कीजिए।
4. आनन्दवर्धन के प्रतिपाद्य का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
5. चतुर्थ उद्योत में प्रदत्त उदाहरणों की समीक्षा कीजिए।
6. अवस्थाभेद से वर्णनभेद कैसे हो जाता है? इसका विश्लेषण कीजिए।
7. प्रतिष्ठापक आचार्य का वर्णन करते हुए रस सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिए।
8. प्रतिष्ठापक आचार्य का वर्णन करते हुए अलङ्कार सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिए।
9. प्रतिष्ठापक आचार्य का वर्णन करते हुए रीति सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिए।
10. प्रतिष्ठापक आचार्य का वर्णन करते हुए वक्रोक्ति सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिए।
11. प्रतिष्ठापक आचार्य का वर्णन करते हुए ध्वनि सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिए।
12. प्रतिष्ठापक आचार्य का वर्णन करते हुए औचित्य सम्प्रदाय पर प्रकाश डालिए।
13. ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के व्यक्तित्व और कृतित्व की समीक्षा कीजिए।
14. आचार्य विश्वनाथ के कृतित्व की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।
15. आचार्य मम्मट के काव्य प्रकाश का निरूपण कीजिए।
16. राजशेखर के व्यक्तित्व और कृतित्व की समीक्षा कीजिए।
17. आचार्य रुद्रट का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
18. पण्डितराज जगन्नाथ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए।
19. आचार्य दण्डी के व्यक्तित्व व कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
20. मेधाविरुद्र का सामान्य परिचय दीजिए।
21. भरतमुनि के रस सूत्र के व्याख्याकारों की समीक्षा कीजिए।

22. ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसके सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
23. आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित ध्वनि के अभाव को स्पष्ट कीजिए।
24. ध्वन्यालोककार के अनुसार स्फोट सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
25. ध्वनि के स्वरूप एवं अर्थ पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
26. ध्वनि के भेदोपभेद पर प्रकाश डालिए।
27. भाक्तमाहुस्तमन्ये की व्याख्या कीजिए।
28. ध्वन्यालोक के मङ्गलाचरण की व्याख्या कीजिए।
29. ध्वन्यालोक के प्रथम कारिका की व्याख्या कीजिए।
30. ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत के आधार पर ध्वनि के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
31. ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत के आधार पर ध्वनि के भेदों का वर्णन कीजिए।
32. ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत के आधार पर ध्वनि के विरोधी मतों की समीक्षा कीजिए।
33. ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत के आधार पर ध्वनि के व्युत्पादन में दूसरे प्रयोजन का वर्णन कीजिए।
34. ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत के आधार की छठवीं कारिका की व्याख्या कीजिए।
35. ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत के आधार की ग्यारहवीं कारिका की व्याख्या कीजिए।
36. ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत के आधार पर ध्वनि के निष्कर्ष रूप का वर्णन कीजिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

- काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2021
- काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं लघुवृत्ति की व्याख्या, व्याख्याकार डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1966
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पुनर्मुद्रण संस्करण 2017
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्याकार एवं सम्पादक शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2013
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्याकार आचार्य जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण 2011
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्याकार डॉ. गङ्गासागर राय, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण विक्रम संवत् २०६७
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्याकार सु. नीलकण्ठ शास्त्री, केरल विश्वविद्यालय, तिरुअनन्तपुरम्, प्रथम संस्करण, 1981
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्यालेखक डॉ. रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, व्याख्याकार पण्डित श्री बदरीनाथ झा, जयकृष्णदास हरिदास गुप्ता, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, बम्बई – ६६
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2014
- ध्वन्यालोक, व्याख्याकार डॉ. रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदार, वाराणसी